

धेरगढ संहिता ।
हठयोगका सचित्र अपूर्व ग्रन्थ ।
भाषा टीका सहित ।



जिसको पहिलत जगन्नाथशर्मा, राजवैद्य ने
उत्तमता के साथ शुद्ध देवनागरी लिपि
अनुवादकरके योगाभ्यासियोंके

उपकारार्थ

गोर्भिकयन्त्रालयप्रयागमें

पं० रामगोपाल शर्मा द्वारा प्रकाशित किया ।

सिवाय ग्रंथ कर्ताके किहीशे ठापने अथवा मुद्रा अदलबदल
करने का अधिकार नहीं है ।

मार्च १९६६

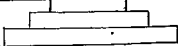
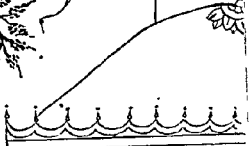
प्रथमवार १९६६

मूल्य १)

LIBRARY
B. S. N. ...
...
...
...

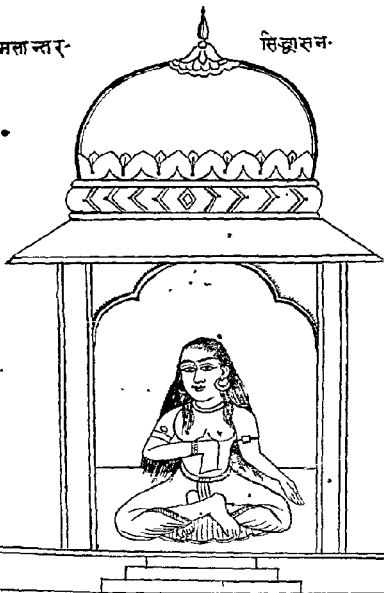


महामुद्रा



मत्तान्तर-

सिद्धासन-

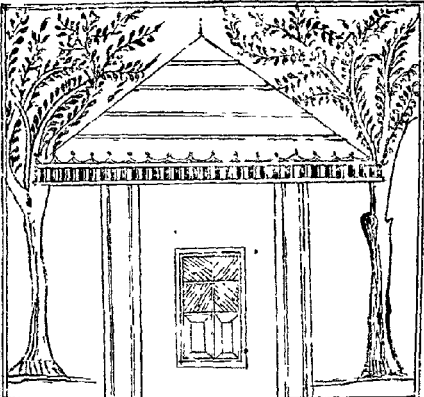




सिद्धासुभ

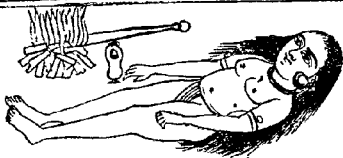
मयूरासन.



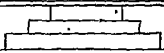


पश्चि मतां नशासन

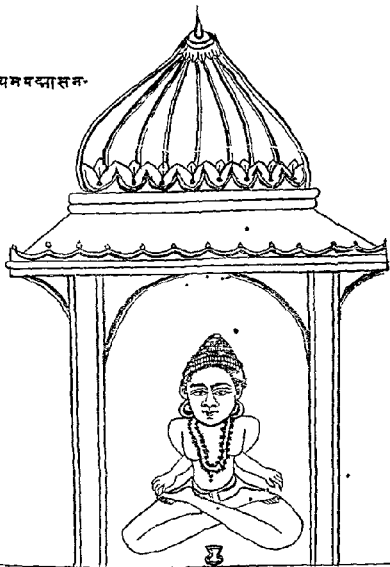
शिव स्नान



सतानरं
पद्मसुतं



प्रथमपद्मासन-

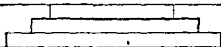
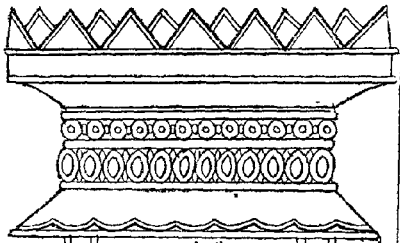




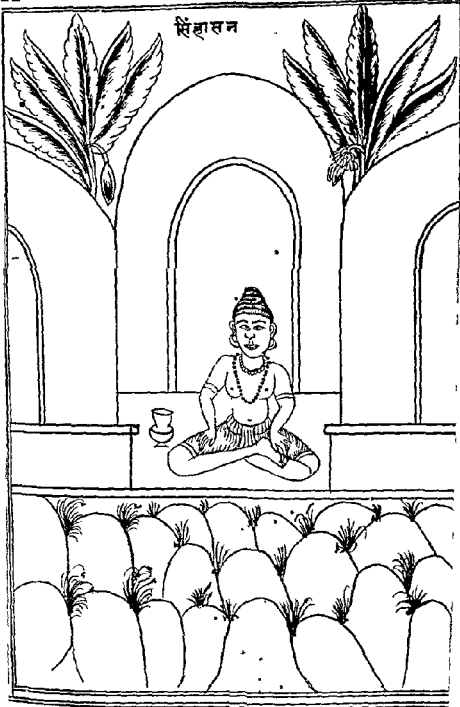
मत्सेन्द्रासन.



घनुरासनं



सिंहासन



महात्म्य.



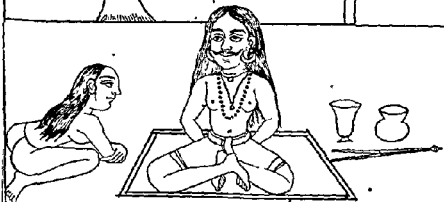


विपरीति.

वज्रोली.



मूलधन्य-





जुहीयापलन्ध

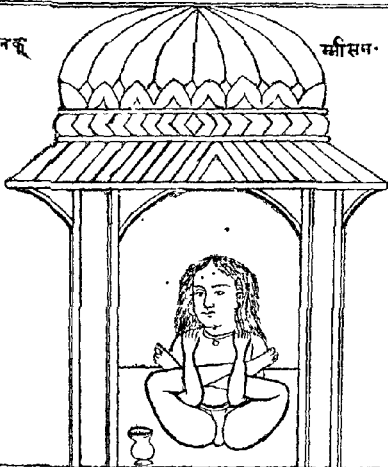
सतान्तर

पुनःपद्यास

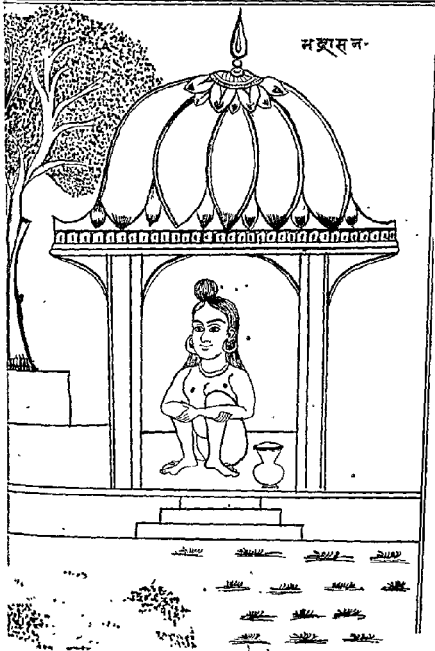


उत्तानकू

स्त्रीसम.



मङ्गल-
न-



कुङ्कुटसूक्तं



महालेघ.



अथ घेरण्डसंहिता ।

एकदाचण्डकापालि गर्त्वाघेरण्डकुट्टिमम् ।

प्रथम्यविनयात्भक्त्या घेरण्डपरिपृच्छति ॥१॥

एक समय चण्डकापालि नामक कोई एक योगी जिज्ञासुभाषी, घेरण्ड नाम एक पहे भारी योगेश्वर को कुट्टी को गये और विनयपूर्वक भक्ति सहित प्रणाम करके घेरण्ड महाराज से पूछने लगे । क्या पूछते हैं, और यह क्या कहते हैं वो नीचे वर्णन किया जाता है ॥

घटस्पयोगयोगेश ! तत्त्वज्ञानस्यकारणम् ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगीश्वर ! वदप्रभो ॥२॥

श्री चण्डकापालिने कहा कि हे योगेश ! तत्त्वज्ञानका कारण घटस्प (शरीरस्य) योग है वो इस समय मेरी इच्छा उमक सुने की हुई है । हे योगेश्वर । हे प्रभो । आप रुपाकर उठे सुनाइये ॥

तत्पर्यं यह कि ज्ञान दो प्रकार का होता है एक सामान्य ज्ञान जो कि पशु पक्षी कीट भ्रमरादि को भी है जिससे कि पशु भी अपनी खाद्य वस्तु घाम भूमा छीसकर ककड पत्यल कभरे नहीं खाता और पक्षी आदि भी ज्ञान के तिनगे नहीं भयतीं । और दूसरा विशेष ज्ञान यद्यपि जिसमें कि अमल काफलक सुख स्वच्छन्दता प्राप्त होने के उपाय सूक्तते हैं । भूमिका में कह आये हैं कि योग विद्या शरीर सहाय का एक प्रधान अङ्ग है बिना शरीर के सहाय रहने से अमल कालिन सुख स्वच्छन्दता लाभ के उपाय नहीं हो । यदि हमने अमल कालिक सुख स्वच्छन्दता लाभके उपाय का ज्ञान तत्त्वज्ञान कहनाता है । यह शरीर के आधेन है इसी विचार का स्थिर करके चण्डकापालि नामक जिज्ञासुं क घटस्प भर्षीत् शरीरस्य योग का तत्त्वज्ञान का कारण कहके घेरण्ड महाराज से पूछा ॥

साधुसाधु महाबाहो ! यस्मात्प्रं परिपृच्छसि ।

कथयामि हि तेवत्स ! सावधानोऽवधारय ॥३॥

चिरण्डजी ने कहा हे महाबाहो ! अर्थात् बाहुबलशालिन् ऋत्रियवंश भूषण जो तुमने मुझसे पूछा इससे मैं तुमको साधुवाद अर्थात् धन्यवाद करता हूं, हे वत्स ! मैं तुमसे कहता हूं, सावधान होके सुनो ॥

तात्पर्य यह कि योगियों के पास अक्षर वेदी लोग श्राया जाया करते हैं जिनकी केवल ऐहिक चिन्ता रहती है, अर्थात् धन, मिट्टी, पुत्र पीछ कुटुम्ब आदि वृद्धिहीनता दुनिर्भ्रं सुपशकैले परन्तु यद्यार्थ भावी मङ्गल अमङ्गलकी चिन्ता करनेवाले योगियोंके निकट बहुतही कम लोग जाते हैं, फिर उक्त धन पुत्रादि जालचियों की प्रकृति जान कर ऐसे योगी भी असंख्य मिलते हैं जो ताकते रहते हैं कि कोई सेने की बि-
हिया कैसे तो चैन उठावें, वे कृत्रिम योगी महाशय चण्डकापालि सरीसे पुरुषों के प्रश्न को ऐसा उठावेंगे कहेंगे कि हमारे गुरु की आज्ञा है कि किसी को मत बताना जिसने ऐसा जान पड़ता है मानो सब इन्हीं के हाथ में है पर वे ऐसे हैं जैसे हाथी के पेट का किया । अर्थात् देखनेमें पूरा पूरा भीतर कुछ भी नहीं । पहिले तो उगों को छोड़ योग विद्या के ज्ञाननेवाले योगीही नहीं मिलते कदाचित् कोई मिठें भी तो उसके सीखने वाले दुर्लभ हैं ॥

यदि देवात् कोई सत्संगी मनुष्य उनके पास गये तो वे योगी महा-
शय बहुत ही प्रसन्न होते हैं जैसे कि चिरण्ड महाराज ने चण्डकापालिको प्रश्न करनेपर धन्यवाद दिया । इससे हम यह भी यहांपर अपने पाठकों को आश्चर्यजनक करते हैं कि जो लोग योगाभ्यासी बने गृहस्थों के यहाँ भीज उठाते हैं और पूछने से या तो क्रोध करते हैं या कहते हैं हमारे गुरु की आज्ञा बताने की नहीं है उन पाशुहियों को कभी न समादर करे अल्कि जहा तक हो सके दण्ड दिलाने का यत्न करे ॥

घेरण्ड महाराज ने जब मंत्र कर्ता चण्डिकापालि जी को धर्मवाद दिया तब हृषीकेश के योग में सब योग का और कपट का जो सच्चा फल है उससे कहने लगे ॥

नास्तिमाया समंपापं, नास्तियोगात्परंब्रह्मं ।
नास्तिज्ञानात्परी बंधुर्नाहङ्कारात्परोरिपुः ॥१॥

माया अर्थात् झंटा प्रपञ्च (जैसे कोई २ योगी लोग यह दिखाया करते हैं कि हम योग विद्या से रांगा की चांदी, तांबाका सेना बनाया करते हैं, तथा मंत्र यन्त्र टोटका टामर के लीर से धन पुष्पादि दिया करते हैं इत्यादि बातें बना के लोगों के ठग करते हैं) इसकी घराघर दूसरांपापं दुनियां में नहीं है। इन सब प्रपञ्च कृत पापियों का अन्त अच्छा नहीं होता वे सदा आभ्यान्तरिक निर्बल रहते हैं अर्थात् दरते रहते हैं कि न जानें किस समय इनारे प्रपञ्च का फसाद सुल पड़े, इसके व्यपरीत सच्चाई का बल दिखाने हैं कि "नास्तियोगात्परंब्रह्मम्" योग के परे कोई भी सच्चा बल मनुष्य का नहीं है। फिर यह बल किसके भरोसे है ? इसपर कहते हैं कि "नास्तिज्ञानात्परीबंधुः" ज्ञान ही मनुष्य का बापु है अर्थात् सत् असत् का भिन्न जो लोग करके कुछ काम करते हैं उनके कार्य्य पुष्ट होते हैं। सत् असत् के भिन्न होने पर भी बहुत से मनुष्य के कार्य्य पुष्ट नहीं होते अर्थात् वे कार्य्य व्यपरीत बुलदाने होते हैं इसपर कहते हैं कि "नाहङ्कारात्परोरिपुः" अहङ्कार के परे कोई भी रिपु नहीं है जो कि सत् असत् वस्तु के भिन्न होने पर भी व्यपरीत फल है ॥

तात्पर्य यह कि बहुत से कपटी मनुष्य और ही मतलब सोच के किसी महात्मा के पास जाते हैं पर वहाँ कुछ और ही प्रगट करते हैं इसी प्रकार महात्मा भी और ही मतलब डाने बैठे रहते हैं परन्तु लोगों

को कुछ भीरही धोखा देते हैं । और उनके पास कुछ ऐसे अज्ञानी मनुष्य जाते हैं जो सोचे हों लाभ में फूल उठते हैं और वे अपने को सिद्ध समझ औरों को निरे अहमक समझ बैठ जाते हैं उनके उस अहकार से भागे और सुखोत्पादक विद्वान्, का उन्नति नहीं होती बल्कि जो कुछ थोड़ा बसा रहता है वह भी कच्चे के कारण भटा हो जाता है । इस्ते अहकार की बराबर कोई भी दुःख दुनिया में नहीं है । इसके उपरान्त घेरह जी कहते हैं अहकार छोड़ के जिस वस्तु को सिद्ध किया चाहें उसमें अभ्यास करे, इसपर दृष्टान्त देते हैं ॥

अभ्यासात्कादिवर्णानि यथाशास्त्राणिबोधयेत् ।

तथायोगंसमासाद्य तत्त्वज्ञानंच लभ्यते ॥ ५ ॥

जैसे अभ्यास करते र ककरादि वर्ण चीन्ह पहने लगते हैं और उनके परिषय के अनन्तर नामा प्रकार के शास्त्रों में बोध हो जाता है इसी प्रकार योगाभ्यास करते र तत्त्वज्ञान (जो पहिने कह जाये हैं) प्राप्त हो जाता है ॥

तात्पर्य यह कि अहकारी मनुष्य का चित्त अभ्यास में कम लगता है, वह अपनी गुरुआइंके आगे दूमरेके उपदेश पर कम विश्वास लाता है इस्ते टिलाईं आ गुतीं है से अहकारको छोड़ कर और टिलाईं को दूर घटाय ले अभ्यास में दूढ होने से योगशास्त्र का फल प्राप्त होता है । कवल कहने से नहीं ॥ इनके उपरान्त कहते है कि जब यह शरीर थोड़े दिन बाद जरा बपाधि से पलित हो नष्ट हो हो जायगी तब थोड़े दिन के लिये ली इतनी सिहयना करे कि सब प्रकार साधारण काराम छोड़ के एकान्त निजंम में घूठ कर शरीरको कष्ट दें । इस पर दृष्टान्त देते हैं ॥

सुकृतैर्दुष्कृतैः कार्थैर्जायते प्राणिनां घटः ।
 घटादुत्पद्यते कर्म घटीयत्रं यथा भ्रमेत् ॥ ६ ॥
 ऊर्ध्वाधो भ्रमते यद्वत् घटोयत्रं गवात्रशात् ।
 तद्वत्कर्म यशाज्जीवो भ्रमतेजन्ममृत्युभिः ॥ ७ ॥

मले और बुरे काम करने से प्राणियों का शरीर उत्पन्न होता है और उस शरीर से फिर कर्म उत्पन्न होते हैं जैसे कि घड़ी चल चलत पुनट कभी नीचे कभी ऊंचे की ओर कल्ला के बम हों घूमती है इसी प्रकार सप्तम मध्यम निकृष्ट कर्मों के बस हो वह जीव भी कर्म और मृत्यु के फेर में बड़ा घूमा करता है । कहते हैं कि यदि जीव कर्म बम जन्म मृत्यु के फेर में बड़ा घूमा करता है तो फिर किस उपाय से वह निट सका है इस पर दृष्टांत देते हैं ॥ -

धामं कुम्भमिवाम्भस्यो जीर्यमाणाः सदाघटः ।
 योगानलेन संदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ॥ ८ ॥

यह शरीर ऐसा गलाघमान है जैसे कच्चे घड़े में जल भरने से वह घड़ा गल जाता है । परन्तु जब उसको आग में पकाय लेते हैं तब कभी नहीं गलता इसी प्रकार इस शरीर को योग रूपी आग से अच्छी तरह पकाय के पक्की करनी चाहिये ॥

तात्पर्य यह कि यह शरीर मही से निर्मित कच्चे घड़े के समान बना है जैसे कच्चे घड़े में पानी भरने पर जल का गुण व्याप्त होने से यह क्रमशः गल के फिर मही में मिल जाता है, इसी प्रकार पाप तत्त्वों से बने शरीर में जीव पानी रूप है जब यह शुभाशुभ काम करता है तब क्रमशः जरा व्याधि उत्पन्न होने से कुछ दिन बाद नष्ट हो जाता है परन्तु जैसे घड़े को आग में अच्छी तरह पकाय लेने पर उसमें कोई बा-

हरी चोट न आवे तो कभी नहीं नष्ट हो सकता वही हजारों वर्ष रहिये ।
 हमी प्रकार योग रूपी आग से (अर्थात् योगाभ्यास करके) अच्छी तरह
 ने यदि देह को पकूी कर ले तो कभी नहीं नष्ट हो सकता जब तक कि
 कोई वाहरी आकस्मिक बाधा न आन पड़ेगी ॥ इसके जो लोग जराम
 रणादि से बारबार जन्म लेना नहीं चाहते तथा शरीर पुष्ट कर ऐहिक
 विशुद्ध सुख भोग की आकांक्षा करने वालों को चाहिये कि योगाभ्यास
 में अपने शरीर को अवश्य विशुद्ध करें । इसके विशुद्ध करने से जब तक
 उन्हें इस ससार में निर्लिप्त हो विचरण करें वा कहीं एक विशुद्ध स्थान
 में बैठे रहें और जब इच्छा हो तब समाधि के द्वारा परब्रह्म में लय हो
 कर परम पुष्टपार्थ मोक्ष पद प्राप्त कर लें । अथवा जब फिर इच्छा हो
 पर ब्रह्माश्रम दित्याति दिव्य शरीर धारण कर ससार रूपी दाघामि से
 जलते भुनते मनुष्यों का उद्धार करें और इसी प्रकार की योग क्रिया का
 संचार कर जीवनमुक्ति ज्ञान स्वरूप धर्म जो इच्छा हो करें करावें ॥ इति ॥

अब यह बात उपस्थित हुई कि योग विद्या सीखने के पूर्व कौन र
 सी सामग्री की आवश्यकता है जिसको सप्रह करके कोई साधक कम
 पूर्वक योगाभ्यास में प्रवृत्त हो उस पर प्रथम सात प्रकार के साधन
 कहते हैं ॥

अथ सप्तसाधनं ।

शोधनं दृढताचैव स्थैर्यं धैर्यञ्च लाघवम् ।

प्रत्यक्षं च निर्लिप्तञ्च घटस्य सप्त साधनम् ॥१॥

चेरह महाराज कहते हैं कि योगविद्या करने वाले के लिये शरीर
 के सात साधन हैं जैसे—१ शोधन (देहको शुद्ध करना) २ दृढता (मजबूती)
 ३ स्थैर्य (एकसमान सर्वदा देहकास्थिर रहना) ४ धैर्य (पबडाना नहीं) ५

लाघव (हलकापन) ई प्रत्यक्ष (मांख आदि इद्रियो से देखना, स्पर्श करना आदि) ७ निर्लिप्त (सब वस्तु का व्यवहार करना परन्तु मय से अलग रहना)

तात्पर्य यह कि शोधन दृढ़ता आदि सप्त साधन न करने से योगाभ्यास में पहिले तो मनही नहीं लगता, यदि च किसी, स्वभाव मिष्ट योगाभ्यासी का मन भी लग गया तो क्रम न रहने से बीच में कोसं २ स्थान ऐसा आन पढ़ने का संयोग हो जाया करता है जिस्से इधर उधर कुछ नहीं मुक्त पड़ता और बिरक्तता जा जाती है वन सब कुछ मही हो जाता है इस्ते ये सप्त साधनही योग शास्त्र के मूल समझे जाते हैं पड़े योगी इमी से चीन्हे जाते है जो कि, सप्त साधन संयत्त हैं । अथ सप्त साधन किस २ कर्म से और किस २ वस्तु से होते हैं उनका वर्णन करते हैं ॥

पट्कर्मणाशोधनञ्च आसनेनमवेदृढम् ।

मुद्रयास्थिरताचैव प्रत्याहारेणधीरता ॥१०॥

प्राणायामान्नाघवञ्च ध्यानात्पूत्यक्षमात्मनि ।

समाधिनानिर्लिप्तञ्च मुक्तिरेवंनसंशयः ॥११॥

१ शोधन छ. कर्मों से होता है । २ आसनों से दृढ़ता होती है, मुद्राओं से स्थिरता, प्रत्याहार से धैर्य । प्राणायाम से लाघव, ध्यान से अपने आत्मा में जो चाहे प्रत्यक्ष हो जाता है । इसीप्रकार समाधि के द्वारा निर्लिप्तता अर्थात् वासना रहित हो जाता है । इसीप्रकार साधनों से अन्त में अवश्य मुक्ति हो जाती है इसमें संशय नहीं है । अथ उन सप्त साधनों में प्रथम शोधन जो षट्कर्मों से होता है उन षट्कर्मों का कहते हैं ॥

अथ षट्कर्माणि ॥

धौतिर्वाणस्तथा नेति लौलिकी त्वाटकं तथा ।

कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥१२॥

जिन छ कर्मों से शोधन होता है वे ये हैं जैसे:- १ धौति २ वस्ति
३ नेति ४ लौलिकी ५ त्वाटक ६ कपालभाति ॥

तात्पर्य यह कि इन छः कर्मों के द्वारा देह शुद्ध हो कर चेतनाकी
समस्कारी हो जाती है, यह शरीर मल से परिपूर्ण है, जिन २ अङ्गों में
जिन २ नाड़ियों में रोगकुपों में चर्मवेष्टियों में तथा अस्थि बन्धनों में
जब मल लिपटा रहता है तब अङ्ग शिथिल रहते हैं । नाड़ियाँ शुद्ध
घालने रहित दधी चलती है । रोगकुपो में से भीतरी दुग्ध वायु निकलने
नहीं पाती बाहरी प्रिमल वायु घुसने नहीं पाती, समझा फटा ररदा
रुस रान कोड़ा फुन्डो आदि से दूषित रहता है, इसी प्रकार पेशिया
ठीक २ लचक सचक नहीं रहती तथा अस्थि बन्धन भी हलुयो को जकड़े
रहते हैं, यदि कभी शीघ्र गमनादि परिश्रम पढा तो पीडा उत्पन्न होती
है इत्यादि कारणों से शरीर के बाह्याभ्यन्तरिक मल का शुद्ध होना बहुत
ही आवश्यक है, इसी लिये शरीर के बाह्याभ्यन्तर मल शुद्ध करने के
लिये योगाभ्यासों लोभ छः कर्म निर्दोषित कर लिये हैं । अथ इन छ
कर्मों में धौति का वर्णन करते हैं ॥

अथ धौतिः ॥

अन्तर्द्वैतिर्दन्तधौति हृद्द्वैतिर्मूलशोधनम् ।

धौतिञ्चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम् ॥१३॥

धौति चार प्रकार की है, १ अन्तर्धौति (शरीर के भीतर साफ

करना) २ दन्त धीति (दातों को साफ करना) ३ हृद्दीति (हृदय को साफ करना) ४ मूल शोधन (नाभि शुद्धि) इस चार प्रकार की धीति से शरीर को निर्मल करना चाहिये ॥

अन्तर्ध्वैतिः ।

धातसारं, वारिसारं, बन्धिसारं, वहिष्कृतम् ।

घटस्य निर्मलार्थाय अन्तर्ध्वैतिश्चतुर्विधा ॥१४॥

धीति भी चार प्रकारी की है । १ 'धातसार' (वायु त्यागना) २ वारिसार (जल त्यागना) ३ बन्धि सार (आगे कहेंगे) ४ वहिष्कृत (यह भी आगे कहेंगे) अब इन चारों में पहिले 'धात सार' का विधान कहते हैं ॥

अथ वातसारः ।

काक चक्षुवदास्येन पिवेद्वायुं शनैः शनैः ।

चालयेदुदरं पश्चाद्दूर्त्मना रेचयेच्छनैः ॥१५॥

अपने मुँह को कीड़े की टोट के समान बनावे अर्थात् देना छोटी की सिकोह कर कीड़े की टोट भी करे और धीरे २ धीरे २ वायु पान कर के पेट में उस वायु को चलावे किरावी पश्चात् फिर धीरे २ उसी की मुँह के द्वार से छोटे इमों क्रिया को घातसार कहते हैं । इसका फल जो वैद्यक शास्त्र से सम्बन्ध रखता है यह चेरपह महाराज कहते हैं ।

वातसारं परंगोष्यं देह निर्मल कारणम् ।

सर्वरोग क्षयकरं देहानल त्रिप्रदुर्कम् ॥१६॥

यह परम गोष्य वातसार कम देह निर्मल करनेवाला, सर्व रोग नाशक, और देह की अग्नि बढ़ानेवाला है ॥

तात्पर्य यह कि चेरह जी कहते हैं हे दण्डकापालि ! इस बातकार कर्म का योगी भोग परम गोप्य कहते हैं 'परन्तु हमने तुम से छिपाय नहीं रक्खा क्योंकि यदि छिपावेंगे तो हम कपटी योगी ठहरेंगे । क्योंकि हमारी धारणा अब स्वार्थ साधन की नहीं रही यह स्वार्थ साधक लोगही गोप्य कहके किसीसे नहीं बताने, यदि चेरह महाराजही यथाथ गोप्य माने रहते तो क्यों दण्डकापालि से कूटपट कह देते याने बिना सेवा टहलाने के एकही दिन की यात चीत से कह चले ? इसे सिद्ध हुआ कि मत्से योगियों की और से यह योग विद्या गोप्य नहीं रहनी चाहिये परन्तु प्रथमसरे स्वार्थ परायण योगियों की प्रकृति को दगांध के चेरह महात्मा ने हँसकर, 'बातभारपरंगोप्य' ऐसा कहा है । और मर्बे रोग लपकर इत्यादि ने साफ जाहिर है कि वैद्यक विद्या से सम्बन्ध रखता है ।

अथ वारिसारः ।

आकण्ठंपूरयेद्वारि वक्तूण च पिवेच्छनैः ॥

चाण्डेदुदरेणैत्र चोदराद्रेचयेदधः ॥ १७ ॥

मूल से घीरे २ कण्ठ पर्यन्त सूय पानी पीवे फिर उसको उदर में पुराये किरावे और उसको अथेमाग्न नर्पात् गुदा द्वारा रेषन करे, इस को वारिसार कहते हैं ॥

' वारिसार प्ररंगोप्यं देह निर्मल कारकम् ।

साधयेत्तं प्रयत्नेन देव देहं प्रपद्यते ॥ १८ ॥

वारिसार भी पहिले की तरह परमगोप्य कहा जाता है यह देह को निर्मल करनेवाला है हमको यह यज्ञ से मान करना चाहिये हमके साधन से देह देह प्राप्त होता है ॥

परम गोप्य का तात्पर्य यह है कि यह क्रिया यही कठिन है कूट

पट सब से नहीं हो सकती । बहुत से लोग ऐसे कठिन कार्य देा चार दिन करके आनस्य बस छोड़ देते हैं और फिर कहा करते हैं कि झूठा नपोंडा है । इस प्रकार के लोगों से एक उपकारी वस्तु की महिमा मट हो जाती है । इस लिये सिवाय अधिकारी के और किसी को ऋट पट नहीं बताना यह भी घेरण्डजी का गूढ़ तात्पर्य है परन्तु सब किसी से गोप्य नहीं है । यह पक्का सिद्धान्त है ॥

अथ अग्निसारः ।

नाभिगून्धिं मेरुपृष्ठे शतवारं च कारयेत् ।

अग्निसारमियंघीति रोगिनां योगसिद्धिदा ॥१९॥

उदरामयजं त्यक्त्वा- जठराग्निं विवर्द्धयेत् ॥२०॥

एषाधौतिः परागोप्या देवानामपि दुर्लभा ।

केवलं धौति मात्रेण देवदेहने भवेद्भुवम् ॥२१॥

नाभी की घषि को सौ बार मेरु पृष्ठ में संलग्न करे अर्थात् पेट को ऐसा खलावे कि नाभी घुस कर जाके पीठ की हड्डी में लग जाय करे । यह अग्निसार धौति कही जाती है । जो कि रोगियोंको योगकी सिद्धि देनेवाली है । यह पेट के रोगों को दूर करके जठराग्नि को बढ़ाती है और यह भी पूषंभत् परम गोप्य है और देवताओंको भी दुर्लभ है । और कुछ करे सबे नहीं परन्तु केवल इसी धौति से देव देह निश्चय हो जाता है । तात्पर्य यह कि रोगी कभी नहीं होगा ॥

अथ वहिष्कृत धौतिः ।

काकीमुद्रां शोधयित्वा पूर्येदुदरं महत् ।

धारयेद्वृषामन्तु चालयेदधो वत्सर्मा ॥२२॥

एषाधौतिः परागोप्या न प्रकाश्याकदाचन ॥२३॥

पहिले कौवे की टोट के समान मुड़ कर के ऐसी वायु पान करे जिसे उदर पूर्ण हो आवे फिर उसी वायु को उदर में भाघे पहर तक रक्खे पश्चात् गुदा के द्वारा बाहर करे । यह भी धीति परम मे प्यहै इस को कभी किसी जैसे तैसे नहों प्रकाश करना क्योंकि बिना दृढता क्रिया नपैगी नहों कूटी कहके निन्दा करने लगेगा । परन्तु दृढ से तो अवश्य कहना ॥

अथ प्रक्षालनम् ।

नाभिमग्नाजलेस्थित्वा शक्तिनाडोविसर्जयेत् ।

कराभ्यां क्षालयेन्नाडो यावन्मल विसर्जनम् ॥

तावत्प्रक्षाल्य नाडो च उदरे वेशयेत् पुनः ॥२३॥

इदं प्रक्षालनं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम् ।

केवलं धीति मात्रेण देवदेहा भवेद्भ्रुवम् ॥२४॥

नाभी हूय आवे ऐमे गहिरै जल में खडा हो के शक्ति नाडी अर्थात् पेट की त्रिपली बही अतही को बाहर करके जय तक मल साफ न हो ले तब तक सूध पोये घाद साफ होने के फिर पेट के भीतर पीठार ले यह प्रक्षालन विधि गोपनीय है और देवताओ को को दुर्लभ है, केवल इस धीति से ही निशय देव देह हो जाता है ॥

अथ वहिष्कृतधौति प्रयोगः ।

यामाहुं धारणे शक्ति यावन् धारयेन्नरः ।

वहिष्कृत महद्द्वीति स्तावन्नैव न जायते ॥२५॥

जय तक सापक भाघे पहर तक श्याम रोकने की शक्ति न प्राप्त कर ले तब तक यह महद्द्वीति क्रिया का करना उचित नहों है, क्योंकि य शक्ति के बिना अनिष्ट होने का हर रहता है ॥

अथ दन्तधौतिः ।

दन्तमूलं जिह्वामूल रध्रञ्जुकर्णायुग्मयो । ।

कपालरध्रपञ्चैते दन्तधौतिर्विधीयते ॥२६॥

दन्त धौति पाच प्रकार की है जैसे-१ दातो की जड़ को धोना, २ जिह्वा की जड़ को धोना ३ । ४ कान के दोनों छेदों को धोना, ५ तथा कपाल के रध्र को धोना ॥

दन्तमूलधौतिः ।

खादिरेणारसेनाथ मृत्तिकयाचशुष्कर्या ।

मार्जयेद्दन्तमूलंच, यावत्किल्बिषमाहरेत् ॥२७॥

खैर के रस से अथवा विशुद्ध सूखी मृत्तिका से दातो की जड़ को साफ करे और जब तक मैल न साफ हो। तब तक कुझा कर २ फिर २ साफ करे ॥

दन्तधौतिकोफल ।

दन्तमूल पराधौति योगिनां योग साधने ।

नित्यंकुर्यात्प्रभाते च दन्तरक्षाश्चयोगवित् ॥२८॥

दन्तमूलंवाविनादि कार्येषु योगिनां मतम् ।

योगियों के योग साधन में दन्तमूल धौति अर्थात् दात का धोना, सब से उत्तम कार्य है । इससे योग के जाननेवाले मनुष्य प्रतिदिन प्रातः काल दातों की रक्षा को किया करें दन्तधावन भणोत् दातून आदि का करना योगियों का मुख्य काम है ॥

तात्पर्य यह कि दातों से और मन से ऐसा भारी सम्बन्ध रहता है कि यदि दात में मिला रहता है तो उससे एक प्रकार की दुर्गन्धि पैदा होती है जो मस्तिष्क में लग कर बुद्धि को अष्ट फरहालती है, तथा नाना प्रकार के रोग उत्पन्न कर शरीर को शिथिल करवालाती है, इसके प्रत्यक्ष लक्षण यह है कि जब दातों के बीच में कोई कस्तू जैसे आमका रोगा वगैरा हैं कभी अटक जाते तो जब तक नहीं निकलते तब तक जिह्वा थिरकल रहती है उसी पर लुरकुराया करती है । इससे और मन बेचैन रहता है दूसरी बात यह कि योगाभ्यास से जायु की वृद्धि होती है अर्थात् योग बल से योगी लोग हजारों वर्ष जीते हैं जी-यन पर्यन्त इन्द्रिया धिनष्ट न हो इसलिये उनके रक्षाकी उपाय अवश्य करनी चाहिये । इसीसे दातोंकी जड़ को योगी लोग साफ रखने की क्रिया को योग साधन कह गये हैं । धात्विक यह क्रिया सब के लिये उत्तम है और आरोग्यता का एक मङ्ग है ।

जिह्वा शोधन ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामि जिह्वाशोधनकारणम् ।

जरामरणरोगादीन् नाशयेद्दीर्घलम्बिका ॥२९॥

चेरएक महाराज कहते हैं कि दन्त शोधन के पश्चात् जिह्वा शोधन कहते हैं । जिह्वा के शोधन से जीभ लम्बी हो जाती है जिसे कि जरा (युद्धाई मरण तथा और २ रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

जिह्वा मूल धौतिः ।

तर्जनीमध्यमानामा अङ्गुलित्रय योगतः ।

वेशयेद्गल मध्येतु मार्जयेद्धम्बिकामूलं ॥

शनैः शनैर्मार्जयित्वा कफदोषं निवारयेत् ॥३०॥

तर्जनी (अँगूठे के पास की अँगुली) मध्यमा (बीच की अँगुली) अ-
नामिका (अँगूठे से चौथी) ये तीन अँगुलियोंका गलेके भीतर प्रवेश करे
और जिह्वा की लहसक खार २ घस्से लगा कर धीरे २ जो कुछ कफ का
दोष हो उसे साफ करे । फिर इस्से कफ मात्र निकल जाता है ॥

मार्जयेन्नवनीतेन , दोहयेच्च पुनः पुनः ।

तदग्रं लौहयन्त्रेण कर्षयित्वा शनैःशनैः ॥३७॥

फिर नवनीत (नैनु) को जिह्वा में लगा कर रोज २ बार २ टुंछे
और फिर छोड़े के चिमटे से उसी जीभ का अग्र भाग पकड़ के धीरे २
रोज खींचा करे ॥

नित्यंकुर्यात् प्रयत्नेन रवेरुदयेकेस्तके ।

एवंकृतेचनित्येच लम्बिकादीर्घतां व्रजेत् ॥३८॥

प्रति दिन सूर्य के उदय और अस्त समयमें यह धीति का अभ्यास
करे यदि इसी प्रकार नित २ यह क्रिया की जावे तो जीभ लम्बी हो
जावेगी ॥

तात्पर्य यह कि मधुर कषाय आदि घट्टरमेका स्वाद, इसी जिह्वा
के द्वारा अनुभव होता है, और वक्ता जो गुण ऐगुण है यह भी मारे
वायु रस जीभ की शिराओं के द्वारा समस्त नाडियों में कूट पट व्याप्त
होता है और यह रक्त में मिल कर या तो रोगादि उत्पन्न करता है,
या मज्जा मांस उत्पन्न कर के शरीर को मोटा कर देता है जिस्से कि
मनुष्य मारे मज्जा मांसके चलनेफिरनेकी शक्तिसे भी विहीन हो निकम्मा
सा हो जाता है । सो इस क्रिया के द्वारा जीभके शिरा कठोर पड़ जाते
हैं और जो कुछ मधुर कषायादि रस खाता है वह कूटपट नाडियों में
गमन न करके आमाशय में जा र्थमता है और वहा पित्त रस के संयोग

से पच कर क्रम से सार भाग आक्यंकर नाडियोंके द्वारा समस्त शरीर में व्याप्त होता है और वायु तथा जलका लेश उस रसके साथ नहीं जाता इससे वह पुरुष बल पीरुष में समाहित मनुष्योंसे अधिक होता है और उनके अङ्ग कहे रहते हैं । फुर्ती धनी रहती है, और सहसा रोगोंसे भय नहीं रहता । इसी लिये योगी लोग दीर्घ जीवी भी हो सकते हैं और दूसरी बात यह है कि बिना जीभ को लम्बा किये योगी लोग असृत पान नहीं कर सके जिसकी क्रिया भागे कहेंगे ॥

कर्णधौतिः ।

तर्जन्यानामिकाग्रोत्तान्मार्जयेत्कर्ण रंध्रयोः ।

नित्यमभ्यास योगेन नादान्तरं प्रकाशयेत् ॥३३॥

तर्जनी और अनामिका अंगुली के योग से कानों के दोनो छेदों को प्रति दिन साफे करे तो एक प्रकार का विशुद्ध नाद प्रगट हुआ करता है ॥

सात्पर्य यह कि एक तो कर्ण में मल नहीं रह जाता जिसे कि घषिरादि अथवा कर्ण मुलादि रोग उत्पन्न होते हैं । दूसरी बात यह भी है कि मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही जो अव्यक्त नाद सुनाई पड़ता है वह भी परिज्ञात हो जाता है । जिसे कि मनुष्य अपनी मृत्यु जान कर उत्तम कर्म उत्तम स्वाम या उत्तम समय का आश्रय ले उक्ता है ॥

कपाल रंध्र शोधन ।

वृद्धाहुष्टेन दक्षेण मार्जयेद्भ्राल रंध्रकम् ।

पुत्रमभ्यास योगेन कफदोषनिवारयेत् ॥३४॥

नाडीनिर्मलतायाति दिव्यदृष्टिःप्रजायते ।

निद्रातेभोजनात्तेच दिनान्तेचदिनेदिने ॥३५॥

दहिने हाथ के अंगूठे के द्वारा प्रतिदिन सोप के उठे तब भोजन के अन्त में, तथा सूर्यास्त समय में, कपाल रत्न अर्थात् शिर के बीच में जो गद्दा रहता है उसे जलही से साफ करे । इस प्रकार के अभ्यास से भीतरी कफ का दोष नष्ट हो जाता है । नाडिया निर्मल हो जाती हैं और दिव्य दृष्टि होती है अर्थात् बहुत दूर तक देखने की शक्ति बढ़ जाती है ॥

हृद्घौतिः (हृदय शोधन) । -

हृद्घौतित्रिविधांकुर्या दंडब्रमनवाससा ॥३६॥

हृद्घौति अर्थात् हृदय साफ करने की विधि तीन प्रकार से है, १ दण्ड घौति, २ ब्रमन घौति, ३ वास घौति ॥

रंभादण्डं हरिद्राया वेत्रदण्डतपैवच ।

हृन्मध्येचालयित्वातु पुन प्रत्याहरेच्छुनै ॥३७॥

केला के बीच का सार भाग उसका दण्ड या हरिदी के पेड़ का दण्ड अथवा चीकने बेल का दण्ड बनाय के हृदय के बीच धीरे २ प्रवेश करके फिर धीरे २ बाहर किया करे । इसी का हृद्घौति कहते हैं ॥

दण्ड घौति ।

कफपित्ततथाक्लेद रेचयेदूर्ध्वंभ्रमना ।

दण्डघौनित्रिधानेन हृद्भोग नाशयेद्भ्रुवम ॥३८॥

इस तरह धौति के करने से, कफ पित्त तथा क्लेद (खँखार) आदि विकारी मल मुह के द्वारा हृदय से निकल बाहर होते हैं, जिसे कि हृदय के समस्त रोग निश्चय नष्ट हो जाते हैं ॥

वसन धौति ।

भोजनांतेपिवेद्वारि आकंठपूर्णितंसुधोः ।

ऊर्ध्वदृष्टिंक्षणांकृत्वा तज्जलं वमयेत्पुनः ॥

नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तनिवारयेत् ॥३१॥

बुद्धिमान् पुरुष भोजन के अन्त में कुछ पथ्यान्त जलपिये फिर थोड़ी देर तक ऊपर की ओर ताकता रहे फिर थोड़ी देर के बाद सभी जल को वमन कर डाले इसी को वसन धौति कहते हैं । इस वसन धौति का प्रतिदिन अभ्यास करने से कफ और पित्त नष्ट हो जाते हैं ॥

विवेचना ।

वसन करने में ऐसा अभ्यास करें जिसमें अन्न न गिरनेपाये केवल जल मात्र गिरे और भोजनान्त से भोजन के उपरान्त ही वसन नहीं करना समझे रहना ४ । ५ घंटे बाद चाहिये तात्पर्य यह है कि राती घंटे में वसन न करें ४

जय जल पीके भाकाग को ओर ताके और वमो करने लगी, यदि जल न गिरे तो किञ्चित् ऊँची हाँककर गिराय दे । इसी प्रकार अभ्यास करते २ फिर छावही गिरने लगीगा ॥

जय जल पीवर ऊपर ताके तय कुल १० मिनटि इससे अधिक नहीं इत्यादि और २ भी धार्से शोच से ॥

वासधौतिः ।

चतुरङ्गुल विस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्विदोत् ।

पुनः प्रत्याहरेदेतत् प्रोच्यते धौतिकर्मकम् ॥४०॥

चार अङ्गुलका भीडा और कमसे कम ५ हाथ लम्बा महीन कपड़ा लेकर धीरे २ निगल जावे, और फिर नमको धीरे २ निकाल बाहर करे, इसी को वास धौति कहते हैं ॥

गुल्मज्वर क्षीहकुष्ठं कफपित्तं विनश्यति ।

आरोग्यं बलपुष्टिञ्च भवेन्नस्य दिनेदिने ॥४१॥

वास धौति अभ्यास करने से गुल्मरोग, म्लीहरोग कुष्ठरोग, तथा कफ और पित्त रोगों का नाश होता है और अभ्यास करने वाले को आरोग्य बल पुष्टि ये सब शरीरक सुख दिन २ मिलते हैं ॥

सात्यर्ष्य-जो नाना प्रकार के पदार्थ भोजन किये जाते हैं उनमें से एक प्रकार का पञ्चा युक्त खार पैदा होता है जो छोटे दिन बाद गाढा हो कर नाहियो का मुख रोक लेता है । और अन्न रस शरीर संचारी नहीं हो कर मल मूत्र के द्वारा निकल जाता है जिस अन्न रस से, शुक्र बनता है, जब अन्न रस शरीर संचारी नहीं होने पाता तो शुक्र कम हो जाता है, इससे शरीर दुर्बल (कमजोर) हो जाता है, परन्तु इस वास धौति के द्वारा यह खार या पञ्चा रोग २ निकल बाहर होता है नाही मुख साफ रहता है, यस शुक्र की वृद्धि अनायास होती है और यह शुक्र पुष्ट होता है, जिससे शरीर में कान्ति बल आदि उपरोक्त समस्त आरोग्यता भी आपही आप प्राप्त होती है ॥

मूलशोधन ।

अपान कूरता तावद्यावन्मूलं न शोधयेत् ।

तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन मूल शोधनमाचरेत् ॥४२॥

जब तक मूल शोधन अर्थात् गुच्छ द्वारा साफ नहीं होता तब तक अपानवायुकी कूरता अर्थात् कड़ापन बनारहता है । और गुच्छसे वायु कष्ट से निश्चलता है । इससे सब प्रकारके यत्नसे मूल शोधन करना उचित है ॥

पीतमूलस्य दण्डेन मध्यमाहुलिनापिवां ।

यत्नेन क्षालयेत् गुह्यं वारिणाच्च पुनपुनः ॥४३॥

कधी हलदी की जड़ से वा मध्यमा अगुली से बार २ यत्नके सहित जरा द्वारा गुच्छ द्वारा साफ करना चाहिये ॥

वारयेत्कोष्ठकाटिन्यमार्माजीर्णनिवारयेत् ।

कारणकान्तिपुष्टयोश्च दीपनंबद्धिमण्डलम् ॥४४॥

मूल शोधन के द्वारा कोष्ठ काटिन्य अर्थात् पेट के भीतर कड़ापन तथा आंग की अजीर्णता बिनष्ट होती है इसी प्रकार देह की कान्ति शरीरकी पुष्टता और अट्टराग्नि की वृद्धि होती है ॥

तत्पर्यं—मनुष्य में वायु प्रकृति के मनुष्य होते हैं जिनका कोठा हर दम कड़ा रहता है और कब्ज की गिनायत घनी रहती है फिर यहातक होता है कि कभी २ वायु सरन भी नहीं होता जिससे आंग वा अजीर्ण हो जाया करता है और अन्त में पेट में भी पीड़ित हो कर घटा कष्ट पाया करते हैं परन्तु ऐन मनुष्य यदि मूल शोधनाद क्रिया से शरीर कारीर्य किया करे तो सब कष्ट निवृत्त हो सकत हैं । यदा पर एक यात

असभ्यता की भी कही जाती है पाठक गण क्षमा करेंगे । अन्तर ऐसेभी मनुष्य देखे गये हैं कि जो योग विद्या से आलसी होकर कष्ट के कारण कुकर्ण द्वारा पीडादि निवारण किया करते हैं । अर्थात् गुदा मैयुन कराय के चैन का मार्ग निकाल लेते हैं । इस कर्म में ऐय्यास और मोटी तौद वाली धनी अन्तर होते हैं । देखिये यह कैसा अन्याय कार्य है । अन्याय के सिवाय उनकी अंतर्द्वियां इसी-कर्म से कमजोर हो जाती हैं और कष्ट पट नर्क गामी भी हो जाते हैं । इसी निमित्त चेरह महा मुनि ने यह योग क्रिया निकाली है जिसमें रोग शांति और निर्मल बुद्धि आदि अनेक गुण हैं, जिनके यह उपरोक्त शिकार्यत हो वे अवश्य इस क्रियाको साधन करें ॥

अथ वस्ति प्रकरणम् ॥

जलवस्तिः शुष्कवस्तिर्वावस्तिः स्याद्विधिर्वास्मृता ॥

जलवस्तिं जले कुर्याच्छुष्कवस्तिं संदाक्षितौ ॥ ४५ ॥

वस्ति दो प्रकार की है—जल वस्ति और शुष्क वस्ति, जलवस्ति जल से, तथा शुष्क वस्ति स्थल में साधन करना चाहिये ॥

जलवस्तिकी विधि ॥

नाभिर्मग्नं जले पायुं न्यस्तवानुत्कटासनं ।

आकुञ्चनं प्रसारञ्च, जलवस्तिं समाचरेत् ॥ ४६ ॥

नाभी दूह जावे ऐसे जलमें बैठ कर उत्कट आसन बैठ कर गुदादेश को सिकाड़े और फैलावे । इसी को जलवस्ति कहते हैं । (उत्कट आसन आसनों के प्रकरण में देखा)

वस्तिकाफल ॥

प्रमेहञ्च उदावर्तं, क्रूरवायुं निवारयेत् ।
भवेत्स्वच्छन्द देहश्च, कामदेव समो भवेत् ॥ ४७ ॥

जल वस्ति के साधन से प्रमेह रोग उदायर्त रोग (१३ रोग हैं) क्रूर वायु (जो घड़ी कठिनता से वायु छूटता हो) रोग नष्ट होते हैं, और साधक स्वच्छ शरीर (देह कायू में रहे) तथा कामदेव की भाति रूप-यान (देह में कान्ति आ जाती है) हो जाता है ॥

दूसरी स्थल वस्ति

वस्तिंपश्चिमोत्तानेन चालयित्वा शनैरधः ।

अश्विनी मुद्रंयापायु माकुञ्चयेत्प्रसारयेत् ॥४७॥

स्थलही में पीठ की ओर चत्तान हो कर पड़े और क्रमशः गुह्य के द्वार को चलावे इसी प्रकार अश्विनी मुद्रा (आगे मुद्रा प्रकरण देखो) के द्वारा गुह्य को सिकोहे और फैलावे, ऐसा करने से स्थल वस्ति साधी जा सकती है ॥

फल ॥

एवमभ्यास योगेन कोष्ठदीपं न विदधते ।

विवर्द्धयेज्जाठराग्निं मामघातं विनाशयेत् ॥४९॥

इसी प्रकार स्थल वस्ति साधना करने से कोष्ठ में दीप नहीं रह जाते और उदर की अग्नि बढ जाती, तथा आमघातरोग भी नष्ट हो जाता है ॥

इति वस्ति प्रकरणम् ॥

अथ नेतियोगः ॥

वितस्तिमान सूक्ष्मसूत्रं, नासानाले प्रवेशयेत् ।

मुखाद्भिर्गमयेत् पश्चात् प्रीच्यते नेतिकर्मकम् ॥५०॥

धीतामर का महीन डेरा नाक के छेदों में डालकर पीछे उसे मुँह की ओर निकाल लिया करें । इसको नेतिकर्म कहते हैं ॥

फल ॥

साधनान्नेतिकर्माणि खेचरी सिद्धिं मामुयात् ।

कफदोष विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥५१॥

नेति कर्म साधन करने से खेचरी सिद्धि हो जाती है अर्थात् कफ दोष नष्ट हो जाता है और दिव्य दृष्टि हो जाती है । किसी आकाश की बहुत सी वस्तुएँ देख पड़ती हैं ॥

तात्पर्य—एक प्रकार का कफ नासिका में जमा करता है और जब वह बहुत जम जाता है तब उस कफ के रेशे बढ़ते २ आख तक जा पहुँचते हैं, जिसे कीचड़ आने लगता है और फिर चेही कफ के रेशे आख में फैल कर माडा बन छाय लेते हैं फिर आख ज्यों की त्यों घनी रहने पर भी नहीं देख पड़ता सभी माडा को अर्थात् कफ के जाला का आख बनाने वाले नहकी से रोद कर निकाल लेते हैं वह जाला मज-बूत भी हो जाता है अर्थात् आख मीजने वा धोने से नहीं फटता न दहता फिर यह योग इसको साफ नष्ट कर हालता है ॥

लौकिकी योग ॥

ध्रमन्तरेगेतुन्दञ्च भामघेदुभपाश्वर्योः ।

स रोगो न्निहन्तीह देहानल विवर्द्धनम् ॥५२॥

अति प्रबल वेग से पेट के दीर्घों बगल घुमावे, इसी का नाम ली
निकी योग है यह योग सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है और
देह की अग्नि को बढ़ाता है अर्थात् लुधा बहुत लगती है, और जो भी
जन किया जाता है वह पच जाता है ॥

त्रोटक योग ॥

निमेपोमेन्पक त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्य निरीक्षयेत् ।

यावदश्रूणि पतन्ति त्रोटके प्रोच्यते, बुधैः ॥५३॥

पलक का भाजना बन्द करके किसी सूक्ष्म वस्तु की ओर जब तक
आसू न गिरे एक टक देगता रहे इसी को त्रोटक योग कहते हैं ॥

फल ।

एवमभ्यास योगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम् ।

नेत्र रोग विनश्यन्ति दिव्य दृष्टि प्रजायते ॥५४॥

इस प्रकार त्रोटक योग का अभ्यास करने से शाम्भवी मुद्रा सिद्ध
हो जाती है अर्थात् एक टक अनिमेष देखने का अभ्यास यहा तक बढ़
जाता है कि जबे जितनी देर तक बिना पल भाजे सकते रहे । इससे
दृष्टि नष्ट नहीं बल्कि नेत्र के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं और दिव्य
दृष्टि भी हो जाती है अर्थात् बहुत सूक्ष्म वस्तु भी देख पढ़ने
लगती है ॥

साक्ष्यं—पह कि जैसे चरमा लगाने से छोटी वस्तु बड़ी सी देख
पड़ती है उसी प्रकार इनक अभ्यास का भी फल है ॥

कपाल भाति योग ।

वातक्रमेणव्युत्क्रमेण शीत्क्रमेणाविशेषतः ।

भालभातित्रिधांकुर्यात् कफदोषनिवारयेत् ॥५५॥

कपाल भाति योग तीन प्रकार का है । वातक्रम व्युत्क्रम, तथा शीतक्रम । इसके साधन से कफ के संपूर्ण दोष नष्ट होते हैं ॥

वातक्रम कपाल भाति ।

ईड्यापूरयेद्वायुं रेचयेत्पिंगलांपुनः ।

पिंगलयापूरयेद्वा पुनश्चंद्रेश्वरेचयेत् ॥५६॥

ईडा और अर्घात् नाक के बायें छेद के द्वारा वायुको खोंचके भरै और पिंगला अर्घात् दहिने छेद से निकाले । इसीप्रकार दहिने छेद से वायु पूरण करे और फिर बायें छेद से निकाले ॥

पूरकरेचकंकृत्वा वेगेननतुचालयेत् ।

एवमभ्यासयोगेन कफदोषनिवारयेत् ॥५७॥

जब पूरा वा रेचक करे अर्घात् स्वास खाँचे और छेदों तय बलद बाजी न करे क्रम से घीरे र खाँचे इसी प्रकार अभ्यास योग करनेसे कफ दोष समस्त नष्ट हो जाते हैं ॥

व्युत्क्रमकपाल भाति ।

नासाभ्यांजलमाकृष्य पुनर्ग्रक्रेणरेचयेत् ।

पायंपायंव्युत्क्रमेण श्लेष्मादोषनिवारयेत् ॥५८॥

देहों नाक के छेदों से जल को शीथ कर फिर मुह की राह से गिराता जाये और मुह की राहमे भी जल पी कर नाक की राह गिराये इसी को शीतक्रम कपाल भाति कहते हैं । यह कफ के समस्त देहों को नष्ट करती है । यह क्रिया बहुत ही कठिन है और यह अभ्यास से निह्नु हो सकती है, नहीं तो मुह से पानी पीकर नासिका से गिराना और नाक से पीकर मुह से गिराना होई नहीं सकता । बल्कि पिया हुआ पानी पेट में चला जाता है इसलिये सावधानी से करना ।

शीतक्रम कपाल भाति ।

शीतृत्वपीत्याबकत्रेण नासानालैर्विरेचयेत् ॥

एवमभ्यासयोगेन कामदेवसमो भवेत् ॥५३॥

नजायतंचवार्द्धक्यं, जरा नैव प्रजायते ।

भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कफदीपनिवारयेत् ॥६०॥

मुह से शीतकार कर (सुरक कर) पानी पीये और उसे नाक के छेदों से गिराये दे, इसके शीतक्रम कपाल भाति कहते हैं । इस प्रकार योगाभ्यास करने से मनुष्य कामदेव की तरह सुन्दर हो जाता है और बुढ़ाई तथा बुढ़ापे की निर्मलता उसके शरीर में कभी नहीं आ सकती । फिर देह अपने काबू में रहती है और कफ के जितने दोष हैं सब नष्ट हो जाते हैं ॥

इतिश्री घेरगुडमंजितायां घेरगुडचरगुडकापालि सख्यादे

पट्ट कर्म साधन नाम प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोपदेशः

अब आसनों की विधि कहते हैं ।

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः ।

चतुरशीति लक्षाणि शिवेन कथितं पुरा ॥१॥

तेषामध्ये विशिष्टानि षोडशानं शतं कृतम् ।

तेषामध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम् ॥२॥

घेरण्ड महाराज ने कहा कि पृथ्वी में कितने जीव जन्तु हैं उतने ही आसन भी हैं । शास्त्रकारों ने औसत दर्जे की राशी लाख बीस लाख संख्या ठहराया है इसी से प्रथम महादेव जी की राशी लाख आसन कह भी चुके हैं । परन्तु उनके जीव ही सोला कम में जहाँ तो चौराशी आसन श्रेष्ठ हैं । उनमें भी केवल यतीश आसन मनुष्य लोक के लिये शुभ हैं बाकी १२ आसन देव लोक के लिये कहे गये हैं ॥

आसनों के भेद ।

सिद्धं, पद्मं, तथा भद्रं, मुक्तं, वज्रञ्च स्वस्तिकम् ।

सिंहं, च गोमुखं, वीरं, घनु, रासन मेवच ॥३॥

मृतं, गुप्तं, तथा मर्त्यं, मर्त्येन्द्रासन मेवच ।

गोरक्षं, पश्चिमोत्तानं, उत्कटं, तङ्कटं तथा ॥४॥

मयूरं, कुक्कुटं, कूर्मं, तथा चोत्तान कूर्मकम् ।

उत्तान मण्डुकं, वृक्षं, मण्डुकं, गरुडं वृषम् ॥५॥

शलभं, मकरं, उष्ट्रं, भुजङ्गञ्च, योगासनम् ।

द्वात्रिंशदासनानितु, मर्त्यलोकेच सिद्धिदम् ॥६॥

सिद्धासन १ पद्मासन २ भद्रासन ३ गुक्तासन ४ यज्ञासन ५ स्वति-
कासन ६ सिंहासन ७ नीलुखासन ८ घौरासन ९ धनुरासन १० सूतासन
११ गुक्तासन १२ मत्स्यासन १३ मत्स्येन्द्रासन १४ गोरलासन १५ पश्चिमोत्ता-
नासन १६ उत्कटासन १७ संकटासन १८ भयूरासन १९ कुवकुटासन २०
सूर्मासन २१ उत्तान कूर्मकासन २२ उत्तान भयडूकासन २३ वृक्षासन २४
भयडूकासन २५ गरुडासन २६ वृषभासन २७ शलभासन २८ मकरासन २९
उष्ट्रासन ३० भुजङ्गासन ३१ योगासन ३२ ये वृत्तीस आसन मनुष्य लोकके
लिये सिद्धि देने वाले हैं अर्थात् रोगादि नियारक तथा घल पुष्टि आदि
बहुविध गुणकारक हैं ॥

सात्पर्य—योगियो के मत से रोग दो प्रकार के होते हैं एक तो का-
पिक जो देह में उत्पन्न होके इन्द्रियो के द्वारा मन को क्लेश पहुंचाते
हैं दूसरे मानसिक जो केवल मस्ती में उत्पन्न हो के सभी मन को परम
क्लेश पहुंचाते हैं । योगियो ने यह परिश्रम से यह आसन प्राणायाम
आदि की "एक क्रिया व्यर्थ करी" निकाला है । आसने के सम्बन्ध में
एक घात और भी कहना है कि जो लोग अक्सर देखा करते हैं कि व
हुत से बाजीगर यौरा भी बहुत से आसन करते हैं और देह के टोर
भाँज की घड़ी २ क्रियायें दिखाया करते हैं । यह भी शारीरक फायदा
पहुँचाती । हमी से अक्सर निरोग रहते हैं । परन्तु वे उस विद्या का
तत्त्व नहीं जानते इसलिये उनके मानसिक क्लेश न दूर हो कर बल्कि
और भी बढ़ते हैं । यानी, मोह मूढ्यादिक दोष यज्ञ के साधक को धष्ट
मार्ग कर हाकते हैं । यहाँ पर इधी लिये जनाया जाता है उचर की
दृष्टि उस प्रकार न जावे ॥

सिद्धासन ॥ १ ॥

योनिस्थानकर्मङ्गुलघटिकं सम्पीडययगुल्फेतरम् ।
 मेढ्रे सम्प्रणिधायतन्तुचिद्युक्तं कृत्वाहृदिस्थायिनम् ॥
 स्थाणुःसंयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन्भुवोरन्तरम् ।
 मोक्षचैत्रविधायतेफलकरं सिद्धासनंप्रोच्यते ॥ ७ ॥

जितेन्द्रिय साधक चैर की लह जाने एही को योनिस्थान (लहा कियों की योनि होती है ऐसी कल्पना कर अर्थात् अण्डकोश के नीचे) में बिहावे और फिर दूसरा गुहक अर्थात् एही लिङ्ग के ऊपर चरे, फिर चिद्युक्त यानी हाथी को छातीमें लगावे फिर इन्द्रियों को साधकर अर्थात् एक ध्यान में बाध कर अचल दृष्टि यानी एकटकी लगा कर भीहो के बीच के स्थान को देखे । इसी प्रकार करने से सिद्धासन कहा जाता है और यह आसन मोक्ष फल तथा अन्यान्य नीरोग आदि फल का देने वाला है ॥

सात्वर्ष्य-मोल यह कि शरीर नीरोग रहने से बुद्धि बढ़ती है बुद्धि बढ़ने से सत् सच का ज्ञान होता है, धर्म निवृत्त होकर जन्म मरणका जो दुःख है उससे छूट जाता है, अकाल मृत्यु से न मर कर काल मृत्यु से मर कर परमात्मा में लय हो जाता है ॥

पद्मासन ॥ २ ॥

वामोरुपरिदक्षिणंहिचरणं संस्थाप्यग्रामंतथा ।
 दक्षोरुपरिपश्चिमेनविधिना कृत्वाकराभ्यांदृढम् ॥
 अंगुष्ठेहृदयेनिधायचिद्युक्तं नातांग्रमाटोकयेत् ।
 एतद्ब्रह्माधिचिनाशकारणपरं पद्मासनंचोच्यते ॥८॥

दहिना पैर बाईं जाघ पर तथा बाया पैर दहिनी जाघ पर रखै और पीछू की ओर से दहिने हाथ से दहिने पैर के जंगूठे को तथा बायें हाथ से बायें पैर के अँगूठे को दृढता से पकड़े । इसी प्रकार धियुक्त (हाथी) छातो पर रखै और नासिका का अध्र भाग देखे । इसी का नाम भद्रासन है । यह आसन समस्त व्याधि विनाश करनेमें श्रेष्ठ है ॥

भद्रासन ॥ ३ ॥

गुल्फौचवृषणस्याथो व्युत्क्रमेणसमाहितः ।
पादागुष्टेकराभ्यांच धृत्वाचपृष्ठदेशतः ॥ १ ॥
जालंधरंसमासाद्य नासाग्रमवलोकयेत् ।
भद्रासनंभवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशकम् ॥१०॥

देहो गुल्फ जघांत एही अङ्कोश के नीचे उलट के रखै बाद पीठ की ओर से दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठों को पकड़े और जालंधर धंघ (आगे में देखो) करके नासिका का अध्र भाग ध्यान करके देखे । इसी का नाम भद्रासन है और यह आसन सब प्रकार की व्याधियों को नष्ट करता है ॥

मुक्तासन ॥ ४ ॥

पायुमूलेग्रामगुल्फं दक्षगुल्फतथोपरि ।
शिरोग्रीवासमंकायं मुक्तासनंतुसिद्धिदम् ॥११॥

बाईं पंजी मुदा के जड़ में लगावे उसी के ऊपर दहिनी एही रखै शिर और गला समान भाग से रखै हितो हुनने न पावे और सीधो शरीर करके बैठे, इसी को मुक्तासन कहते हैं । यह आसन साधक को सब प्रकार की सिद्धि देने वाला है ॥

वज्रासन ५ ।

लंघाभ्यां वज्रवत् कृत्वा गुदपार्श्वे पदानुभौ ।

वज्रासनं भवेदेतत् योगिनां सिद्धि दायकम् ॥१२॥

दानों जांघों को वज्र के आकार करके गुदा के दोनों तरफ दानों पर बिहावे। इसी को वज्रासन कहते हैं। यह आसन योगियों को सिद्धि प्रदान करता है ॥

स्वस्तिकासन ६ ।

जानूर्ध्वोरन्तरे कृत्वा योगी पाद तले उभे ।

ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥१३॥

दानों जानु अर्थात् पिडुनी दानों जांघोंके बीच करके दानों पर तल भी वही मध्य में रखे और एंठवेंठ टाढ़ कर सरल भाव शरीर करके बैठे। यही स्वस्तिकासन कहलाता है ॥

सिंहासन ७ ।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेणोर्द्ध्वतांगतः ।

चितिमूलोभूमिसंस्थः कृत्वाच जानुनोपरि ॥१४॥

व्येक्तोर्व्येक्तौ जलंध्रं च, नासाय मवलोकयेत् ।

सिंहासनं भवेदेतत् सर्व व्यधि विनाशकम् ॥१५॥

दानों एही अंहकोश के नीचे उलट कर परस्पर बिहाव के रखे और ऊपर की ओर माहर कर ले-और दानों पिडुनी भूमि में लगाय दें तथा पिडुलियों के ऊपर मुँह को खोल कर ऊपों करके। जालपर बंध

(आगे देखो) के आश्रय से नरसिंहा का अग्रभाग देखे । इसी को सिंहासन कहते हैं । इसी आसन के द्वारा सब प्रकार की व्याधि विनष्ट होती है ॥

गोमुखसन ८ ।

पादौच भ्रमोसंस्थाप्य, पृष्ठपाद्वे निवेशयेत् ।
स्थिरकायं समासाद्य, गोमुखं गोमुखाकृतिः ॥१६॥

दोना पैरो को भूमि में स्थापन करके पीठके बगवोमें लगावे और स्थिर शरीर होकर बैठे तो यह गोमुख के आकार देख पड़ेगा, इसी का नाम गोमुखासन है ॥

वीरासन ९ ।

एक पाद मथैकस्मिन् विन्यसेदुरुसंस्थितम् ।
इतरस्मिन्स्तथा पश्चाद्वीरासन मित्तीरितम् ॥१७॥

एक जघा के ऊपर एक पैर रख के दूसरा पैर पीछे की ओर रखे इसी को वीरासन कहते हैं ॥

धनुरासन १० ।

पसार्यपादौ भुविदण्डरूपौ, करौचपृष्ठे धृतपादयुग्मम् ।
कृत्याधनुस्तुल्यपरिवर्तिताङ्गम् जगदयोगीधनुरासनन्तत् १८

दोना पाद भूतल में समान भाव से दण्डा की तरह फैलाय दे दोना कर पृष्ठ की ओर से ला कर दोना पैरों को पकड़े और देह को धनुष के आकार बनावे और उठटे पुलटे इसीको योगी लोग धनुरासन कहते हैं ॥

मृत्तासन ११ ।

उत्तान शववह्नूमौ, शयानन्तु सवासनम् ।
शवासनं श्रमहरं, चित्तविश्रान्ति कारणम् ॥११॥

मरे मनुष्य की तरह परातल में शयन करनेही से मृत्तासन होता है इसको शवासन कहते हैं यह आसन श्रम को विनष्ट करता है और चित्त विश्रान्त का कारण है ॥

गुप्तासन १२ ।

जानुनेरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत् ।
पादोपरिच सस्थाप्य गुदं गुप्तासन विदुः ॥२०॥

दोनों गुठुनों के बीच में दोनों पावों को गुप्त भाग से रखें और दोनों पावों पर गुदा को स्थापन करें । इसी को गुप्तासन कहते हैं ॥

मत्स्यासन १३ ।

मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत् ।
कूर्पराभ्यांशिरोवेष्ट्य, मत्स्यासनन्तु रोगहा ॥२१॥

मुक्त पद्मासन लगाव के हाथ के दोनों गुठुनों में शिर को लुपेटे और चित्त होके पड़ जावे । इसी को मत्स्यासन कहते हैं । यह रोगनाशन यमस्त रोगों का नाश करता है ॥

पश्चिमोत्तान आसन १४ ।

प्रसार्यपादौज्ज्विदगडरपौ, सन्यस्तभालश्चित्तियुग्ममध्यै ।
यत्नेनपादौचधृतीकराभ्यां, योगीन्द्रपीठपश्चिमोत्तानमाहुः ॥२२॥

दोना पाय भूमि में दण्डा की तरह फैलाय दे और यत्र के सहित
दोना पाय हाथों से पकड़े और दोना जाघो के बीच अपने शिर को
पैठारै, इसी को योगीन्द्र लोग पश्चिमोत्तान भासन कहते हैं ॥

मत्स्येन्द्रासन १५ ।

उदरं पश्चिमा भासं कृत्वातिष्ठति यत्नतः ।

नम्रांग वामपादं हि, दक्षजानु परिन्ध्यसेत् ॥२३॥

तत्र याम्यं कूर्परश्च याम्यं करेच वक्रकम् ।

भुवोर्मध्ये गतां दृष्टि पीठमात्स्येन्द्रमुच्यते ॥२४॥

पेटको पीठकी तरह करे अर्थात् पेटकुजा पड़े और बाये पैरको नवाय
के दहिने पैर को जघा पर रखे, इसी प्रकार उस बाये पैर पर दहिने
पैर को एही रखे । इधर दहिने हाथ पर मुह को रखे और भीहो के
अध्मस्तल को देखे । इसके मत्स्येन्द्र आसन कहत हैं ॥

गोरक्षासन १६ ।

जानूर्वोरन्तरेपादौ उत्तानाव्यक्त संस्थितौ ।

गुत्फौचाच्छाद्य हस्ताभ्या मुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः ॥२५॥

कण्ठसङ्कोचनं कृत्वा नासाग्र मवलोकयेत् ।

गोरक्षासनमित्याह योगिनांसिद्धिकारणम् ॥२६॥

दोना जाघ और पिहुलियो के मध्य में दोना पैर उत्तान करके गुत्
मास से रखे फिर दोना हाथो से दोना एही मूँद ले । इसके बाद कंठ
को मज्जुचिन काके नासिका का अग्र भाग अवलोकन करे । एहीको गो
रक्षासन कहते हैं । यह योगियो को सिद्धि देने वाला है ॥

उत्कटासन ॥१७॥

श्रंगुष्ठाभ्यामवष्टभ्य घरांगुल्फेचखेगतौ ।

तत्रोपरिगुदंन्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनं ॥२७॥

पैर को दोनों अंगूठों के धल से भूमि में स्थित हो के दोनों एड़ियों को निरालम्ब हो के उठाव दे और उर्हीं एड़ियों पर गुदा को रखै । इसी को उत्कटासन जानना चाहिये ॥

सङ्कटासन ॥१८॥

वामपादंचितेर्मूलं सन्यस्यधरणीतले ।

पाददण्डेनयाम्येन वेष्टयेद्वामपादकम् ॥२८॥

जानुयुग्मेकरौयुग्म मेतत्सङ्कटासनं ।

बायां पैर और बायां गुठुना भूमि में लगावे और दहिने पैरसे बायां पैर लपेट से और फिर दोनों जाघों पर दोनों हाथ रखै । इसी को सङ्कटासन कहते हैं ॥

मयूरासन ॥१९॥

घरामवष्टभ्यकरयोस्तलाभ्यां, तत्कूर्परेस्थापितनाभि

पार्श्वम् । उच्चासनेदण्डवदुत्थितःखे मयूरमेतत्प्रयदन्ति-
पीठम् ॥२९॥

हाथ के दोनों तलों से भूमि को धारण करे फिर हाथ की दोनों गाठियों को नाभी के दोनों धगलों में स्थापन करना और दोनों पैरों को बैलाय के ऊंचे आसन से दंडे की तरह आकाश में देह को उठावे । यही मयूर आसन है ॥

कुक्कुटासन ॥२०॥

पद्मासनं समासाद्य जानूर्वोरन्तरे करी ।

कूर्पराभ्यां समासीनो मञ्जुस्यः कुक्कुटासनम् ॥३०॥

पद्मासन में बैठकर दोनों अंगों और दोनों पिंडुलों के बीचमें हाथ को पीठारे और-दोनों हाथों की गठियों पर मंच की तरह सठ के छेदे इसी को कुक्कुटासन कहते हैं ॥

कूर्मासन ॥२१॥

गुल्फौ च वृषणास्थाद्यो व्युत्क्रमेण समाहितौ ।

ऋजुकायशिरो ग्रीवं कूर्मासनमितीरितं ॥३१॥

दोनों एड़ियोंको अण्डकोप के नीचे सलटके रखें । शिर और ग्रीवा तथा देह को सीधे तौर पर रखें इसी को कूर्मासन कहते हैं ॥

उत्तान कूर्मासन ॥२२॥

कुक्कुटासनमध्यस्थं कराभ्यां घृतकन्धरम् ।

पीठं कूर्मवदुत्तानं मेतदुत्तानकूर्मकम् ॥३२॥

महिले कुक्कुटासन बाध ले फिर दोनों हाथों से काधा पकड़ के कर्तुबे की तरह उत्तान हो जाय, इसी को उत्तान कूर्मासन कहते हैं ॥

उत्तान मण्डूकासन ॥२३॥

मण्डूकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां घृतं शिरः ।

एतद्भेकवदुत्तानं मेतदुत्तानमण्डुकम् ॥३३॥

मंडूकासन में बैठकर हाथों के तिरुनों से शिर धारण करके उत्तान
हो जावे । इसी का नाम है उत्तान मंडूक ॥

वृक्षासन ॥२४॥

वामोरुमूलदेशे च याम्येपादौ निधावतु ।
तिष्ठेत्तु वृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः ॥२४॥

दहिना पांच बाईं जांचके मूल अर्थात् कटमें रखे और समानभाव
से घुड़ की तरह खड़ा हो इसी का वृक्षासन जानना ॥

मण्डूकासन ॥२५॥

पादतलौ पृष्ठदेशे ऽहुण्ठे द्वे च संस्पृशेत् ।

जानुयुग्मं पुरस्कृत्य साधयेन्मंडूकासनम् ॥२५॥

दोनों घेर पीठ की ओर करके सनके दोनों जोंगूटे परस्पर एक से
भिदावे, तथा दोनों जांच सामने की ओर रखे, इसी प्रकार मंडूकासन
साधन करे ॥

गरुडासन ॥२६॥

जङ्घोरुभ्यां धरां पीडय स्थिरकायो द्विजानुना ।

जानूपरिकरं युग्मं गरुडासनमुच्यते ॥२६॥

दोनों जाघों से तथा दोनों विंहुलियों से भूमि को दबावे और
दोनों विंहुलियों पर दोनों हाथ रखे । इसीको गरुडासन कहते हैं ॥

वृषासन ॥२७॥

- याम्यगुल्फेपायुमूलं यामभागेपदेतरं ।
त्रिपरीतंस्पृशेद्भूमि वृषासनमिदम्भवेत् ॥३७॥

गुल्फ द्वार'वे' दक्षिण एही के ऊपर रस के उसी के याम भाग में मार्थ पाय को उलटा करके रखते भूमि के स्पर्श करे इसी को वृषासन कहते हैं ॥

शलभासन ॥२८॥

- अधास्यःशेतेकरघुर्म घक्षेभूमिभवष्टभ्य करयोस्त-
लाभ्यां । पादौचशून्येचचित्तिचोर्द्धुम् घदंतिपीठंशल-
भंमुनीन्द्राः ॥३८॥

नीचे मुह करके शयन करे । घलस्थल में दोनों कर स्थापन कर के दोनों करतलों से चूत्तिका पकड़ कर दोनों पैर शून्य भाग में बिलसभर ऊंचे राखे इसी का नाम शलभासन है ॥

मकरासन ॥२९॥

- अधास्यःशेते हृदयनिधाय भूमौचपादौ चप्रसार्य-
माणी । शिरश्चघृत्वाकरदण्डयुग्मे देहाग्निकारंमकारा-
सनन्तत् ॥३९॥

भूमि में घेटकुजः पीठ लावे और नीचे मुह करके छातीको भूमि में लगाय ले, और दोनों पैर फैलाय दे । फिर दोनों हाथों से शिर धारण करे । इसीको मकरासन कहते हैं ॥

उष्ट्रासन ३० ।

अघास्यःशेतेपदयुग्मव्यस्तं, पृष्ठेनिधायापिष्टतंकराभ्याम् ।
 आकुञ्चयेत्सम्यगुदरास्थगाढं, उष्ट्रञ्चपीठंयोगिनोवदन्ति ४०

अघो बदन शयन करके दोनों पैर ऊँट के पीठ की ओर लावे । पीछे दोनों हाथों से इन्हीं पैरों को धर के मुह और पेट दृढ़ भाव से सिकोड़ ले, इसी को उष्ट्रासन कहते हैं ॥

भुजंगासन ।

अंगुष्ठनाभि पर्यन्त मधो भूमौ विन्यसेत् ।
 करतलाभ्यां घरांघृत्वा, उर्ध्वशीर्षं फणीवहि ॥४१॥
 देहाग्नि र्बद्धते नित्यं, सर्व रोग विनाशनम् ।
 जागर्ति भुजगी देवी साधनात् भुजंगासनम् ॥४२॥

पैर के अंगूठे से लेकर नाभि पर्यन्त देह की भीषी औरवाला भाग घरासल में अच्छी तरह स्थापन करके हाथ के दोनों तलों (पक्षियों) से भूमि को अवनम्वन करे और सव के फन की भांति गिर भागके उठावे, इसी को भुजंगासन कहते हैं ॥

फल ॥

इसके साधन से शरीर की अग्नि दिन २ बढ़ती जाती है । सात्वयं यह कि भूल अच्छी तरह से लगती है, अन्न जो कुछ खाया जाता है अच्छी तरह से परिपक्व हो कर शरीरके पुष्टि पहुँचाता है । इसी कारण रोग राशि अर्थात् जिसने रोग इस आसन साधन के पूर्व रहे हों सबको

नष्ट करता है । इसी भासन के अभ्यास करने से भुजगी देवी अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है । जिसका वृत्तान्त आगे लिखेंगे ॥

योगासन ।

उत्तानौचरणौ कृत्वा संस्थाप्य जानुनोपरि ।

आसनोपरि संस्थाप्य उत्तानं कर घुग्मकम् ॥४३॥

पूरकैवायुमाकृष्य नासाग्र मवलोकयेत् ।

योगासनं भवेदेतत् योगिनां योग साधने ॥४४॥

दोनों पैरों का चित्त कर दोनों नासों के ऊपर सत्यावित कर के दोनों कर उत्तान भाग से आसन के ऊपर रखे, बाद पूरक प्राणायामके द्वारा वायु खींच कुम्भक करे अर्थात् जहाँ तक हो सके यामे रहे और उसी समय में नासिका का अग्र-भाग अंगुलौकन करे । इसी को योगासन कहते हैं । योग साधन विषय में यह आसन योगिया को अवश्य साधन करना चाहिये ॥

इति घेराडसहिताया इतीयापदेश ॥ २ ॥

तृतीयोपदेशः

अथ मुद्रा कथनम् (अथ मुद्रा कहते हैं)

महामुद्रा, नभोमुद्रा, उर्द्धायानं, जलंधरम् ।

मूलबन्ध महाबन्ध, महावेधश्च, खेचरी ॥१॥

विपरीतकरी, योनि, वज्राणी, शक्तिधारिणी ।

ताड्याणी, मांडवीमुद्रा, शाम्भवी पञ्चचारणी ॥२॥

आश्विनी, पाशिनी, काकी, मातङ्गीच, भुजङ्गिनी ।

पञ्चविंशति मुद्राणि, सिद्धदानाह योगिनाम् ॥३॥

घेरण्ड महाराज ने फिर कहा कि, पहिले जे भुजङ्गासन के रूप में कुण्डलिनी शक्ति के जागने की खान कह आवे हैं उस कुण्डलिनी शक्ति के जागने में मुद्रा भी चाहिये बिना मुद्रा कुण्डलिनी शक्ति * सोई रहती है इसलिये पचीस प्रकार की मुद्रा हैं, उनके नाम ये हैं:-

* ग्रहणामल में लिखा है कि गुरु के प्रसाद से यह सोई हुए कुण्डलिनी शक्ति जागती है अन्यथा नहीं, यह कुण्डलिनी शक्ति क्या है उसपर कहते हैं कि देहके अन्तर्गत बीस चक्र हैं उनमें कमलकी पशुरियोंके समान मांस पेशियां आपस में जकड़ी कमल के फूल की तरह निकुडी रहती हैं तथा जहां २ हड्डियों के जोड़ हैं वे भी "अस्थिवन्धन" नामक कठोर रत्नों से जकड़े रहते हैं, इस्से जब शरीर में मांस या रक्त मज्जा की अधिकता होती है तो वह शरीर मन के योग की धम में नहीं रहता, जिधर चाहिये उधर फेरिये, जिधर चाहिये उधर झुकाइये, जिधर चाहिये उधर मरोड़िये, अथवा शीघ्रगति से अङ्गोंको उठाइये बैठाइये, यह नहीं हो सक्ता । परन्तु जब देहकी कुण्डलिनीशक्ति जाग उठती है तो ये सब मन के अधीन हो जाते हैं, जिधर चाहिये फेरिये मरोड़िये उठाइये बैठाइये, लम्प, लम्प, लोर, क्लिटिक मही कुर्तों से हो सक्ते हैं, यह कुण्डलिनी शक्ति यही है कि रग, नग, पेशी आदि की जकड़ बन्दी, उसका जागना यह है कि रग, नग, पेशियों की जकड़बन्दी खुल जाये, यह खुलनाही उसका जागना है ॥

१ महासुद्रा, २ नभोसुद्रा ३ उड्डीयान, ४ जलधर, ५ सुल्पवन्ध,
 ६ महाबन्ध, ७ महावेध, ८ खेत्री, ९ विपरीतकरी, १० योगि,
 ११ बक्रोणी, १२ शक्तिधारिणी, १३ ताष्टागी, १४ मांडवी, १५ शम्भवी,
 धारणा मुद्रा पांच प्रकार की है जिनमें १ पार्श्वीधारणा (१६) २ आम्भवी
 धारणा (१७) ३ वैश्वानरी धारणा (१८) ४ धायवी धारणा (१९) ५ नभो-
 धारणा (२०) इसके बाद २१ अश्विनी, २२ पाशिनी, २३ काफ़ी, २४ मातङ्गी
 २५ मुजङ्गिनी ॥

मुद्रानां पटलं देवि, कथितं तव सन्निधौ ।

येनविज्ञात मात्रेण, सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥४॥

गोपनीयं सयत्नेन; न देयं यस्य कस्यचित् ।

प्रीतिदं योगिनां चैव, दुर्लभं मरुतामपि ॥५॥

श्री महादेव जी पार्वती जी से कहते हैं कि हे देवि । तुम्हारे
 निकट सब मुद्राओं का नाम हमने कहा । इनके जान लेने ही से सब

लिखा है कि यह कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्म रंघ्र की ओर मुख किये
 जाती है, तात्पर्य यह है कि हृदय कमल जिसको कलेजा कहते हैं उससे
 सब नाडियों निकल कर समस्त शरीर में व्याप्त हैं और उनकी दीर्घ म-
 स्तिष्क की ओर है, जहां कहीं घट्टा लगता है तो यह क्लृप्ताहट त्रिजुनी
 की शक्ति से भी शीघ्र मस्तिष्क में पहुँच कर मुख दुख बोध करती हैं ।
 परन्तु जब तक मन रग, नश, माह्री, पेशी आदि शरीर के टुकड़े-अलग-
 गति कारक नहीं होते तब तक मानसिक वृत्ति की स्थिति स्थापकता
 नहीं आती और इसीसे यह लिय कर ज्ञान होने पर भी विसृष्ट वृत्ति का
 निरोध जो योग का प्रथम लक्षण है नहीं प्राप्त होता । इसी लिये हठ
 योग द्वारा उस कुण्डलिनी-शक्ति को लगाना उचित है, इससे आसन
 मुद्रा आदि प्रयोग करना आवश्यक है ॥

प्रकार की चिट्ठियां लाभ देती हैं । ये सब विषय परम गोपनीय हैं । जिस किसी को कभी नहीं देना चाहिये (क्योंकि बिना प्रतिज्ञा से साक्षित हो नहीं सके, चक्षुष्य जन दीक्षित करेंगे, न वन पड़ेगा तो इस विद्या को कूटी कह कर दूध प्रतिज्ञो का भी मन भड़काय देंगे, दोढ़े दिन बाद यह विद्या लोप हो जायगी) ये सब मुद्रा योगियों को ही परम प्रीति देनेवाली हैं । यह मुद्रा देवताओं को भी दुर्लभ हैं । तात्पर्य यह कि जो कोई साधन करेगा उसी की संपत्ति है, दिग्गहो को कभी नवस्तर नहीं है ॥

महा मुद्रा ।

पायुमूलंचामगुल्फे संपीडनकृदयत्नतः ।

याम्यपादंप्रसार्यांध करेधृतपदांगुलः ॥६॥

कंठसंकोचनंकृत्वा भुवोर्मध्यनिरीक्षयेत् ।

महामुद्राभिधामुद्रा कथ्यतेचैवसूरिभः ॥७॥

गुदा मूल को घाई एहीसे सूय मजबूती के साथ दबावे और दहिने पैर को फैलाय दे । और हाथ से पैर की अंगुली धरे, फिर कंठ को संकुचित करके भीहों के मध्य भाग को देखे । इसी को पवित्र गण महामुद्रा नाम से पुकारते हैं ॥

इसका फल ।

क्षयकासंगुदावर्ते प्लीहाजीर्णज्वरन्तथा ।

नाशयेत्सर्वरोगांश्च महामुद्रातिसेवनात् ॥८॥

उपरोक्त महामुद्रा को अधिक संसेवन करने से अर्थात् अभ्यास करने से, क्षय कास, (सर्पों की खांसी) गुदापतन (गुदा के चारों ओर वाले व्रण)

झीहा (पिलहं) जीर्ण ज्वर (पुराना ज्वर) तथा और २ सय प्रकार रोगो को यह महामुद्रा नाश करती है ॥

नभोमुद्रा ।

यत्रयत्रस्थितेयोगी सर्वकार्येषुसर्वदा ।

ऊर्ध्वजिह्वःस्थिरोभूत्वा धारयेत्पवनंसदा ।

नभोमुद्राभवेदेपा योगिनांयोगनाशिनी ॥१॥

जब जब योगी किसी कार्य में लगे तब २ सर्वदा ही ऊपर की ओर जिह्वा करके कुम्भक द्वारा स्थिर हो पवन को धारण किया करे, यह अभ्यास सदा रखने से योगियों के समस्त रोग नष्ट हुआ करते हैं, इसी को नभो मुद्रा कहते हैं ॥

सात्पर्य यह कि हर काम में हर प्रकार की गुण त्रेगुणकारी हवा ध्यापही गुण औगुणकारी रही जाती है । यदि इस नभोमुद्रा का अभ्यास रहेगा तो शक्त कुम्भक के द्वारा, बाहर की हवा का धाना बन्द करदेगा तो मलिन दुर्गन्धित तथा विकारी हवा पेट के भीतर न जा सकेगी । रोगो की उत्पत्ति अकसर इन्हा के माथ अङ्गीले देशो के पेट में जाने से हुआ करती है सो देशकाल देख रखे तो बहुतही अत्राय हुआ करेगा ॥

उड्डीयानबन्ध ।

उदरेपश्चिमंतानं नाभेरूर्ध्वन्तुकारयेत् ।

उड्डीयानकुरुतेयत् तदविश्रातंमपाखग ॥

उड्डीयानन्त्यसौवन्धो भृत्युमातङ्गकेशरी ॥१०॥

नाडी का ऊपरी भाग और पश्चिम द्वार को उदर के मग भाग में सिकोहना चाहिये । अर्थात् उदर का मध्यम भागस्य गुह्यादि चक्र स्थित

भाभी समूह को नाभी के ऊपर सिंकोह के उठाना चाहिये, इसी को उड्डीयानग्रन्थ कहते हैं, यह उड्डीयानग्रन्थ मृत्यु के लिये नासंग और केशरी भाव से हैं, अर्थात् मृत्यु रूपी हाथी को यह सिंह की तरह मारहालता है, तात्पर्य यह कि मृत्यु इसके साधन से जल्द नहीं हो सकती ॥

उड्डीयान बंध का विशेष फल ।

समग्रात्बन्धनात्क्षैतत् उड्डीयानंविशिष्यते ।

उड्डीयानेसमभ्यस्तेमुक्ति स्वाभाविकीभवेत् ॥१३॥

जितने मुद्रा ग्रन्थ कहे गये हैं सब में यह उड्डीयान ग्रन्थ विशेष अर्थात् उत्तम है । उड्डीयान ग्रन्थ के अभ्यास से, आपही अल्प मुक्ति प्राप्त होती है, अर्थात् और बहुत मानसिक व्यापारों की आवश्यकता नहीं रहती । तात्पर्य यह कि इसके साधन से सदसत् का ज्ञान स्वभाव ही से बढ़ता है ॥

शिव संहिता में इस मुद्रा का फल यह लिखा है कि जो योगी इस को प्रतिदिन बार बार करता है उसके नाभी का पथन शुद्ध हो जाता है । इसी प्रकार छः महीना अभ्यास करने से मृत्यु को जीत लेता है । अर्थात् उसके उदर की अग्नि प्रज्वलित होती है और जो कुछ खाता है वह सब भस्म हो के रज यानी (अक्षरों की वृद्धि करता है और रोगों को नष्ट कर डालता है, फिर दत्तात्रयी जी की संहिता में भी लिखा है कि जो लोग अत्यन्त युद्धे होगये हों और इस उड्डीयानबंध का अभ्यास करें तो युवा हो सके हैं और छः महीना प्रतिदिन करने से मृत्यु को जीत सके हैं ॥

इत सब योग ग्रन्थ से साफ मालूम होता है कि घैटक शास्त्र से और योग शास्त्र से बहुतही सम्बन्ध है, इसी निमित्त हमारे भारतवर्ष

का वैद्यक स्राश सद्य देश के वैद्यक से नत्तन था, परन्तु अब इस समय आत्मनी लोगों ने मय नष्ट करहाला, सिर्फ विदेशी चिकित्सा के आधीन हो गये ।

जालंधर बंध ।

कण्ठसंकोचनंकृत्वा चिबुकंहृदयेन्यसेत् ।

जालन्धरेकृतेबंधे षोडशाधारबन्धनम् ॥१२॥

जालन्धरंमहामुद्रा मृत्योश्चक्षयकारिणी ।

कण्ठ सङ्कोचन करके हृदय (डांती) पर चिबुक (बाड़ी) रखनेही से जालन्धर बन्ध कहा जाता है, इसके साधन करने से सोलह प्रकार के आपर बन्ध हुआ करते हैं, और यह मृत्यु को भी नष्ट करहालता है ॥

जालंधर बन्ध का फल ।

सिद्धंजालन्धरबंधं योगिनांसिद्धिदायकं ।

परासासमभ्यस्येत् योहिसिद्धोनात्रसंशयः ॥१३॥

यह जालंधर बंध स्वयं सिद्ध है । यह योगियो को सिद्धि देनेवाला है । जो युद्धिमान यः महीना इसका अभ्यास करता है वह अवश्य सिद्ध हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥

शिव महिता में लिखा है कि इस जालंधर बंध को साधन कर के साधक हमोके द्वारा शरीरस्थ महंस्त्रदल कमल में समूह को नीचे की ओर उतार के पाल कर मक्का है और अगर पद अर्थात् मृत्यु कभी न हो ऐसा पद या मक्का है । वास्तवमें यह है कि हृदय में एक न्याम ऐसा है जिसे कलेजा कहते हैं, यह पचापंने कमल की तरह है और उग की

नसे पेशियां भी कमल दल की तरह हैं । ये पेशियां हजारसे भी अधिक होंगी । आनाशय से जब भोजन की वस्तु का रस रक्त बन के जाता है तो पहिले वहीं जमा होकर नाडियों के द्वारा शरीर में व्याप्त होता है, इस मुद्रा से नाडियां तन कर पंचु छोड़, चार भाग को व्याप्त का रोग नष्ट करती है ॥

मूलबन्ध ।

पाप्पिर्णानाग्रामपादस्य योनिमाकुञ्चयेत्ततः ।
नाभिग्रन्थिंमेरुदण्डं सम्पीड्यं यत्नतःसुधीः ॥१४॥
मेढ्रं दक्षिणा गुल्फेतु दृढबन्धं समाचरेत् ।
जराविनाशिनी मुद्रा, मूलबन्धो निगद्यते ॥१५॥

घायें पैर की एड़ी से गुदा प्रदेश को मिकोड़े समके बाद नाभी की ग्रन्थि को मेरु दण्ड (कमर के पीछे की हड्डी) से दबावे और उपस्थ को दहिने एड़ी से मजबूत दबा के रखें, इसी को मूलबन्ध कहते हैं । यह मुद्रा बुढ़ाई को नष्ट कर डालती है ॥

मूलबन्ध का फल ।

संसार सागरं तर्तुं सभिलपति यः पुमान् ।
धिरलेपुगुप्तीभूत्वा, मुद्रामेनां समभ्यसेत् ॥१६॥
अभ्यासाद्बन्धनस्यास्य मरुत्सिद्धिर्भवेद्भ्रुवम् ।
सादृयेद्यत्नतत्तर्हि मौनी तु विजितालसः ॥१७॥

जो मनुष्य संसार सागर पार होने की इच्छा करे वे धिरल प्यान (विरत) से गुप्त भाव से इस मुद्रा का अभ्यास करे । इस मूलबन्ध के

अभ्यास से निश्चय मह सिद्धि (वायु को बाध) कर सकते हैं । इससे साधक आलस्य को परित्याग करके नीम हो यत्र पूर्वक इसको साधन करेंगे ॥

सात्पर्य यह है कि जब वायु काबू हो जायगा तब वह साधक जब पूरी तौर से वायु को शरीर में भर के कुम्भक प्राणायाम से अपने पीरुष को भी संचालन करेगा तो जहा इच्छा हो वहां उड़ सकता है । इसी साधना से बहुतेरे हाथ दे हाथ ऊंची जमीन से निराधार उठ जाया करते हैं ॥

महाबन्ध ।

वाम पादस्य गुल्फेतु पायुमानं निरीधयेत् ।

दक्षपादेन तद्गुल्फं सम्पीडय यत्रतः सुधीः ॥१८॥

शनैःशनैश्चालयेत्पाणिं योनिमाकुञ्चयेच्छनैः ।

जालंधरे धारयेत्प्राणं, महाबन्धोनिगद्यते ॥१९॥

घायें गुल्फ (एडी) से गुदा द्वार को रोक लेना और दहिने पैर से घायें को दायते हुये घीरे २ गुल्फ देग को चलावे और घीरे २ उसी गुल्फ देग को चिकोडे । और जालपर यन्ध जो कह आये हैं उसके द्वारा प्राण वायु को धारण करे । इसी को महाबन्ध कहते हैं ॥

महाबन्ध का फल ।

महाबन्धः परोबन्धो जरामरण नाशनः ।

प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्वं वाञ्छितम् ॥२०॥

यह महाबन्ध नामकी मुद्रा सब मुद्राओंमें श्रेष्ठ है और जरा (बुढ़ाई)

तथा स्मरण नाश करने वाली है । इस महाग्रन्थ के प्रसाद से सब प्रकार के बाधित सारे जा सकते हैं ॥

महावेध कथन ।

रूपयौवनलावण्यं नारीणांपुरुषत्रिणा ।

मूलग्रन्थमहाग्रन्थौ महावेधत्रिनांतथा ॥२१॥

महाग्रन्थं समासाद्य उद्वोनकुम्भकंचरेत् ।

महावेधःसमाख्यातो योगिनांसिद्धिदायकः ॥२२॥

जैसे पुन्य के बिना नारियों का सुन्दर रूप, लवानी तथा लक्षण्य (लोनाई) निष्फल रहती है । वैसाही महावेध मुद्रा के बिना मूल ग्रन्थ तथा महाग्रन्थ भी किसी काम के नहीं रहते । पहिले महाग्रन्थ मुद्रा करे फिर उद्दीयान ग्रन्थ (जो कह आये हैं) मुद्रा करके कुम्भक प्राणायाम से वायु को निरोध करनेही से महावेध मुद्रा कही जाती है । इसी महावेध के द्वारा योगी योग सिद्धि प्राप्त किया करते हैं ॥

महावेध का फल ।

महाग्रन्थमूलग्रन्थौ महावेधतमन्विती ।

प्रत्यहंकुरुतेयस्तु सयोगीयोगविजयः ॥२३॥

नमृत्युतोभयंतस्य नजरातस्यश्चिद्वने ।

गोपनीयःप्रयत्नेन त्रेत्रोययोगिपुंगवैः ॥२४॥

जो साधक प्रतिदिन इस महावेध के सहित महाग्रन्थ और मूलग्रन्थ का पाठन किया करते हैं वेही योगियों में उत्तम योग विद्या के जानने

धाले कहे जासके हैं । मृत्यु और युद्धाहं उनको कभी नहीं दबाय सकी यह मुद्रा परम मोपनीय है योगियों में श्रेष्ठ जन इसको हर किसी से नहीं कहते ॥

खेचरी मुद्रा ।

जिह्वाधोनादींसंछिन्नां रसनांचालयेत्सदा ।
 देहाहयेन्नवनीतेन लौहयंत्रेणकर्मयेत् ॥२५॥
 एवंनित्यंसमभ्यासाल्पम्बिका दीर्घतां व्रजेत् ।
 यावद्गच्छेद्भुवोर्मध्ये तथागच्छतिखेचरी ॥२६॥
 रसनांतालुमध्येतु शनैःशनैःप्रवेशयेत् ।
 कपालकुहरेजिह्वा प्रविष्टात्रिपरीतगा ॥
 भुवोर्मध्येगतादृष्टि मुद्राभवतिखेचरी ॥२७॥

जिह्वा के नीचे जिह्वामूल और जिह्वा इन दोनों को जो नाड़ी जोड़े रहती है उसको काट देते और नित्यही जिह्वा के अग्र भाग जिह्वा के नीचे, सदा चलाया करे । और जीभ को नवनीत (नेत्र) से टुहा करे और मोहो की जिह्वा छेत्तनी (चिमटा) द्वारा लोभा करे । इसी प्रकार प्रतिदिन करने से, जीभ लंबी हो जाती है । क्रम से अभ्यास करते २ जीभ को इस प्रकार लंबी करे जिसे कि यह दोनों भीड़ों के बीच तक पहुंच जाये । फिर उसी जीभ को क्रम से तन्मये के बीच से जाना चाहिये । तानु प्रदेश मध्यम गहुर. (गहुरा) को कपाल कुहर कहते हैं । जीभ को उसी कपाल कुहर में ऊपर की ओर लुप्त के प्रयोगित कर के दोनों भीड़ों का मध्यम्यन अवलोकन करे, इसको खेचरी मुद्रा कहते हैं ॥

खेचरी मुद्रा का फल ।

नचमूर्च्छा क्षुधादृष्ट्या नैवालस्यं प्रजायते ।

न च रोगो जरा मृत्युर्देवदेहः स जायते ॥२८॥

जो मनुष्य इस खेचरी मुद्रा का साधन किया करते हैं उनको मूर्छा, क्षुधा, दृष्ट्या, कभी नहीं क्रोध दे सके, और न कभी कालस्य आवे, न रोग निकट आवे, और उनके समीप बुढ़ाई, या मृत्यु कभी नहीं आ सकती, और वे देव देह हो जाते हैं । और भी:-

नाग्निना दहयते गात्रं, न शोषयति मारुतः ।

न देहं क्लेदयन्त्यापो दंशयेन्व भुजंगमः ॥२९॥

जो खेचरी मुद्रा का साधन करते हैं, उनको अग्नि नहीं जलाय सकती, वायु उसके नहीं सुखाय सके । जल उसके शरीर को सुखाय नहीं सके । तथा उसके सर्प भी नहीं काट सके ॥

विपरीतकरी मुद्रा ।

नाभिभूले वसेत्सूर्य्यं स्तातुमूले च चन्द्रमाः ।

अमृतं असतेसूर्य्यं स्ततोमृत्यु वशीनरः ॥३०॥

ऊर्ध्वे च गमयेत्सूर्य्यं चन्द्रञ्च अध आनयेत् ।

विपरीतकरी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गीयिता ॥३१॥

भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मं समाहितः ।

ऊर्ध्वपादः शिरोभूत्वा त्रिपरीतकरीमता ॥३२॥

नाभि की जड़ में सूर्य (सूर्य नाड़ी) वास करते हैं और मुलनेत्र-
लुये की जड़ में चन्द्रमा (चन्द्र नाड़ी) है जब नीचे से सूर्य अपने त्रेत्र
के भाकार्पण से देह स्थित भ्रूत को ग्रस कर लेते हैं, तब मनुष्य मृत्यु के
वश हो जाता है ॥

इस लिये ऊपर की ओर सूर्य को उठाना चाहिये और नीचे की
ओर चन्द्रमा को ले आना चाहिये । इसी का नाम विपरीतकरी मुद्रा है
और सब तन्त्रों में गुप्त रखी गई है ॥

इसकी क्रिया इस प्रकार है—भूमि में गिर को स्थापन करे और
दोनों हाथों से भूमि घाभ कर पैरों को ऊपर की ओर उठाय के सीधा
खड़ा करे और पूरक प्राणायाम से वायु खींच कर कुम्भक के द्वारा जहा
तक ठहरा जाये ठहरे । इसी को विपरीतकरी मुद्रा कहते हैं ॥

तात्पर्य—नाभि में एक नाड़ी ऐसी है जिसको जठराग्नि उत्पन्न
कहते हैं अर्थात् हृदय के पास जो पित्तस्त्राय नाड़ी है उससे बड़ा गरम र
पित्त बोहा र बढ़कर उमी नही के द्वारा जा कर आमाशय के अक को
पकाता है और यहां से अन्न रस निकल कर अन्न रस वाहक नाड़ी के
द्वारा समस्त शरीर में पहुंचता है, परन्तु जब पित्त रस अधिक प्रबाहित
हो कर उस नाड़ी में जाता है तब पित्त कापित हुआ कहा जाता है
अर्थात् पित्त की इतनी अधिकाहं हो जाती है कि शरीर के समस्त रस
को शरम कर हानता है और अन्न रस की शक्ति को दूषित करके अनेक
प्रकार की वैलिक व्याधिया उत्पन्न करता है, फिर उन व्याधियों से म-
नुष्य बहुत जल्द मर जाता है, इस क्रिया के नियारण के वास्ते यह
विपरीतकरीमुद्रा कहाये, यानी गिर नीचे करके ऊपरकी ओर पैर उठाय
के प्रति दिन घंटे दो घंटे जहा तक ठहर सके किया करे तो यह पित्त
रस जो अधिकाहं से नाभि की जड़ वाला नाड़ी में जाके विकार उत्पन्न
किया करता है वह नहीं होये, अर्थात् यह पित्त रस जलीय पदार्थ है,

जल की गति नीचे की ओर है तो नीचे तालु नाड़ीकी ओर आकर कफ की माही लिते चन्द्र नाडी कहते हैं आकर मिलेगा तो क्षौद्र (खिलार) वनके दन्तधावन आदि क्रियाओं से निकल आया करेगा, बस शरीर मोरोग रह कर दीर्घायु प्राप्त करेगा ॥

अक्सर जब पित्त कोप करता है तब नाभि के पास टटोलने से भाग की तरह जलता है, मूत्र गरम और लाल होता है, तमाम बदन मोरस हो कर पोंडा करता है, पैतृक ज्वर होने से दाह, (जलन) तृषा (प्यास) आदि तेजमय उपद्रव शरीर भर में हो जाते है योगीयोग इन सब उपद्रवों से साफ अचे रहते हैं ॥

त्रिपरीतकरी मुद्रा का फल ।

मुद्रेयं साधयेन्नित्यं जरां मृत्युं च नाशयेत् ।

ससिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेपि न सीदति ॥३३॥

जो मनुष्य इस मुद्राकी प्रतिदिन साधन करता है, वह जरा (बुढ़ाई) और मरण से बचा रहता है, फिर वह सब लोको में सिद्ध हो जाता है और प्रलय होने पर भी अभय रहता है, नहीं मरता ॥

अथ योनि मुद्रा ।

सिद्धासनं समासाद्य कर्णाचक्षुर्नसोमुखम् ।

ध्रंगुष्ठतर्जनीमध्यानामादिभिश्चसाधयेत् ॥३४॥

काकीभिः प्राणसंरूप्य अल्पाने योजयेत्ततः ।

पट्चक्राणिक्रमोद्घात्वा हुं, हस., मनुनासुधीः ॥३५॥

चैतन्य मानये देवी निद्रिताया भुजगिनी ।

जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य करांबुजे ॥३६॥
 शक्तिमयः स्वयं भूत्वा परंशिवेन संगमम् ।
 नानासुखं विहारं च, चिन्तयेत्परमं सुखम् ॥३७॥
 शिवशक्तिसमायोगा देकान्तं भुविभावयेत् ।
 आनन्दंचस्वयंभूत्वा अहं ब्रह्मेति सम्भवेत् ॥३८॥
 योनिमुद्रा परागोप्या देवानामपि दुर्लभा ।
 सकृत्तुलाभ संसिद्धिः समाधिस्थः स एवहि ॥३९॥

प्रथम सिद्धासन (जो पहिले कह आये है) से बैठे, फिर कान, नास, नाक, मुँह ये चार द्वारों को अँगूठे, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका इन अँगूठियों से ढाँप ले । अर्थात् कान के दोनों छेदों को दोनों अँगूठों से, दोनों नासों को दोनों तर्जनी से, दोनों नाक के छेदों को दोनों मध्यमा से, मुख को दोनों अनामिका से ढाँपे । फिर काकी मुद्रा से प्राण वायु को आकर्षण करे और फिर उसे अपान वायु (अधोवायु) में मिलाप दे, उसके बाद शरीरस्य जो छः चक्र हैं उनका ध्यान करे अर्थात् यह कल्पना करे मानों हम उन्हें देख रहे हैं उसी समय में "हुं" और "हंसः" इन दो मंत्रों के द्वारा भुजंगिनी रूप कुण्डलिनी देवी को जगावे । तथा श्री-वात्सा सहित उन्कुण्डलिनी को महस्वार कमल में उठाय के ले जावे, और यह साधक इस प्रकार चिन्ता करे माने "मैं शक्तिमय होकर शिव के साथ प्रसंग में भागना होता हुये परम आनन्द भोग और विहार करता हूँ तथा शिव शक्ति के संयोग से महीं मानन्द मय प्रलभ हूँ" इसी को योनि मुद्रा कहते हैं, यह मुद्रा परम योगनीय है यह देखते तो भी दुर्लभ है इस मुद्रा को एक बार भी कोई साधन करे तो साधनेवाला पुनःपुनः सिद्ध हो जाता है, इसके द्वारा बहुत ही जल्द समाधि प्राप्त हो जाती है ॥

तात्पर्य यह कि—मनुष्य जिस वस्तु का अभ्यास जी लगा कर करे वही वस्तु उसके मनोवृत्ति में दृढ़ बहू हो जाती है. यदि मनुष्य रात दिन दुःख की कथा, दुःख की वार्ता, दुःख की आलोचना दुःख की चिन्ता करता रहै तो वह दुःख उसके तन मन में विन्धा रहता है. परन्तु यदि मनुष्य निरंतर सुख की ओर मन को लगाये रहै तो उस के समीप वदाही सुख रूपवान सा बना रहता है. इसीलिये योगी लोग दुःख की जगह भी सुखही ध्यान किया करते हैं । योग शस्त्र का यह सिद्ध न्त है कि सुख दुःख समान मानना, परन्तु यह बात धिना अभ्यास नहीं हो सकती, चेरंड महाराज ने सब मुद्राओं को शरीरके दुःख निवृत्ति के लिये कहा है परन्तु इसको मानसिक दुःख निवृत्ति के लिये बताया है । अभ्यास करते र जब इस प्रकार की शक्ति हो जावे कि चित्त वृत्ति जिस में लगावे उसीमें जुगो रहै अन्यत्र न टलै तो मनाधि मिदु हो गई । इस सब से बढ़ कर चित्त वृत्ति निरोध के अभ्यास को बढ़ाने वाली यह योनि मुद्रा है ।

शिव संहिता जादि ग्रन्थों में इस योनि मुद्रा को दूसरे प्रकार से कहा है परन्तु वह इस चेरंड महाराज की दर्शाई हुई योनि मुद्रा के तुल्य शीघ्र फलदायक नहीं है । यहां इस प्रकार लिखा है—प्रथम मन को पूरक योग से अपने मूलाधार पद्म में वायु के सहित पूरण करे वाद योनिस्थान (गुदा और लिंग के बीच के स्थान को योनि स्थान कहते हैं) को चैरो से सिकोड कर भगाकार बनावे । उसी समय में उम ब्रह्मयोनि में कामदेव को ध्यान करे, यह कामदेव लज पुष्प की तरह लाल बर्ण कोटि सूर्य की तरह तेज, कोटि चन्द्रमाकी भांति शीतल है यह भी चिन्ता करे फिर ऊपर परमाशक्ति को भी इसी प्रकार ध्यान करे कि मानों वे शक्ति भग्नि गिखा की तरह, सूक्ष्म रूप, चैतन्य भाव हैं और वे परमात्मा के सहित एकत्र हो मिली हैं । इस प्रकार ध्यान करना होगा फिर प्राणायाम के बल से शूल, सूक्ष्म और कारण इन तीन प्रकार के सब-

यद्यो से युक्त जीवात्मा कुण्डलिनी शक्ति के सहित सुपुत्रा के छेद हो के
 ब्रह्म मार्ग में जाता है । शिर के मध्य में जो नीचे मुख कमल है उसकी
 कर्णिका के भीतर कुण्डलिनी शक्ति परमात्मा के साथ सङ्गम में आसक्त
 हो रही है उसके संगम से पाटल वर्ण (कुछ सफेदी लिये पीला) तेजवान्
 मानन्द मय अमृत की धारा बहती है । जीवात्मा योग बल से मूलाधार
 के ऊपर हो के उठ कर सभी बहते हुये अमृत को पान करता है । इसी
 प्रकार फिर भाव नीचे की तरफ निकल के मूलाधारमें स्थित ब्रह्मयोगिनि
 में आकर प्रवेश करे । इसी प्रकार साधक जीवात्मा को ब्रह्मयोगिनि में
 निकाल पैठार रूपी प्राणायाम की मात्रा युक्त करे । इसी प्रकार प्राणा-
 याग तीन बार करना चाहिये । मूलाधार पद्म में ब्रह्मयोगिनि में प्राण
 कुण्डलिनी परमात्मा की प्राण रूविणी हो रही हैं । इसी प्रकार निकाल
 पैठार के बाद फिर भी यही जीवात्मा कालाग्नि आदि शिवात्मक ब्रह्म
 योगिनि में लय प्राप्त होता है, इसी प्रकार चिन्ता करे । इसी को योगिनि
 मुद्रा कहते हैं । यह मुद्रा जितनी मुद्रा हैं सब में प्रधान है । इस के
 प्रभाव से साधक समस्त कर्म अच्छी तरह से सिद्ध कर सका है । इन सब
 बातों का गूढ़ सात्पर्य यह है कि श्याम के रोकने के सहित सामयिक
 वृत्ति को गिर तरफ लगाइये उसी तरफ यह लग कर उसी प्रकार का
 सुख दुःख अनुभव करेगा । भाव अपने मन को यदि पूरी तीर से इन
 कल्पना में लगायें कि हम नर्क कुण्ड में सुयोधे जा रहे हैं, हमें लोहे के
 तप्त तंभे में कोड़े निपकाव रहा है तो यही दुःख साक्षात् होगा, यदि
 इन्द्रामन पर घेरे देव लोक की मायाग भोग रहे हैं ऐसी कल्पना की-
 जियेगा तो यही सुख प्राप्त होगा । इसी निमित्त सामयिक स्थिति के
 अध्ययन के लिये दृष्ट योग को घेरण्ड महाराज ने सत्तम समस्त कर ऐसी
 ऐसी क्रियायें सिद्ध की हैं ॥

योनिमुद्रा का फल ।

ब्रह्महा भूषहा चैव सुरापी गुरुतल्पगः ।
 एतैः पापैर्न लिप्येत योनिमुद्रा निवन्धनात् ॥४२॥
 यानिपापानिघोराणि, उपपापानि यानिच ।
 तानिसर्वाणिनश्यन्ति योनिमुद्रानिवन्धनात् ॥४३॥
 तस्माद्भ्यसनं कुर्याद्वादि मुक्तिंसमिच्छति ।

जो जो योनिमुद्रा साधन करते हैं, वे, यदि ब्रह्मघात भी कर चुके हों वा पात घात कर चुके हों अथवा सुरा पान करते २ पित्राटक ही गये हों, या गुरुपत्नी के साथ पापाचरण कर चुके हों तो भी इनके महापापों से लिप्त नहीं होते ॥

और भी जो २ वहे २ भवानक महा पाप हैं, या जितने उपपाप हैं वे भी सब इस योनिमुद्रा के निवन्धन से नष्ट हो जाते हैं, इससे यदि कोई मुक्ति की इच्छा करे तो वह योनिमुद्रा का अभ्यास जरूर करे ॥

सात्यय्य—ब्रह्मघात आदि पाप से छूटने का जहां कहीं फल आता है वहां अन्तर लोग शक्य कर बैठते हैं कि यह तो और भी पाप का बहाना ठहरा यानी राज २ पाप करे और राज २ योनिमुद्रा आदि कर्म साधन करे तो कभी पाप नहीं लगेगा, 'यस मातो पाप करने के लिये एक अभय मार्ग ठहराया गया । विशेषता—दोनों ऊपरके श्लोक में लिखा है कि 'एतैः पापैर्न लिप्येत' अर्थात् इन पापों से लिप्त न हो । सो विस्त होने का क्या सात्यय्य है? निप्त कहते हैं जो कि रात दिन सभीसे मन व्यक्त कर्म से लिपटा रहे, अर्थात् राग रहे, धरन्तु जो शक्य योनि मुद्रा का अभ्यास करेगा वह कदाचित् ब्रह्म इत्या गुरु पत्नी

प्रसङ्ग आदि पापों में लिप्त अर्थात् मन बच कर्म से रात दिन लगा भी हो तो इस आनन्द की क्रिया में लगने से फिर उसको उधर के पापों के करने की फुरसत नहीं रह जावेगी । आप जानते हैं कि एक तुच्छ घात चौपट शतरंज का खेल है जिसमें कोई भी फल नहीं परन्तु जब मनुष्य का चित्त उधर लग जाता है तो रोटी खाना तक नहीं अच्छा लगता और यहां तक देखा गया है कि शाम से खेलने बैठे और सवेरा होगया, सूर्य उदय हो आये, निद्रा का सुर भस्मीभूत कर, प्रिय समागम में तिलाञ्जलि दे पी-बारा-खह छकड़ी-कर रहे हैं, तो यदि योग की क्रिया में मन लग जावे तो कहिये फिर यह लिप्तता जोकि दिन रात भयानक पापों की ओर तुरन्त के समान दौड़ता हुआ मन विश्रान नहीं पाता पापों कर रह सका है ? अर्थात् योनिमुद्रा के बहुत सुख की साधना से ये सब भूल जावेंगे और यह सूढ़ चित्त उन सब महा पापों से तथा उप पापों से अनायास बच कर विशुद्धता लाभ करेगा, इसीसे श्लोक में एक पद लिखा है कि "योनिमुद्रा निघन्धनात्" अर्थात् योनिमुद्रा साधन के बन्धन से । तात्पर्य यह कि योनिमुद्रा का साधन उसको बान्धे रहेगा कि सी प्रकार वह महा पातक तथा उप पातकों के निकट नहीं जानेपावेगा, इससे यह सिद्ध भया कि फल के लियेने याछे चेरखड महाराज ने मिथ्या नहीं लिखा, जो शक्त साधन करेगा यह अवश्य सब पापों से मुक्त हो सिद्धि भाग्य को प्राप्त होगा, अन्त में मुक्ति लाभ करेगा । चेरखड जी ने साफ लिखा है कि जो मुक्ति की इच्छा करें अर्थात् यदि चाहे कि इन सब पापों से छूट वेही इस मुद्रा का अभ्यास करें, तात्पर्य यह कि दूगरे से नहीं हो सकेगा ।

वज्रोणमुद्रा ।

धरामचटभ्यकरयोस्तंभाभ्या ऊर्ध्वक्षिपेत्पादयुगंशिरःखे ।
शक्तिप्रतीधायचिरजीशनाय वज्रोणिमुद्रामुनयोवदन्ति ४२

दानों हाथों की गंदारी से घरातल को पकड़ के दानो पाखों को ऊपर उठाव दे और उधर गिर भी आकाश में उठाय दे केवल हाथ के बल खहारहे, इसीको मुनिलोग वज्रोणीमुद्रा कहते हैं, इसके अभ्यास से शरीर की शक्ति (ताकत) बढ़ती है और बहुत दिन तक जी सकता है ॥

वज्रोणीमुद्रा का विशेष फल ।

अयंयोगीयोगश्रेष्ठो योगिनामुक्तिकारणम् ।

अयंहितप्रदायोगो योगिनांसिद्धंदायकः ॥४३॥

एतद्योगप्रसादेन बिन्दुसिद्धिर्भवेद्भुवम् ।

सिद्धेविन्दौमहायत्ने किंनसिध्यतिभूतले ॥४४॥

भोगेनमहतायुक्तो यदिमुद्रांसमाचरेत् ।

तथापिसकलासिद्धिस्तस्यभवतिनिश्चितम् ॥४५॥

यह मुद्रा साधन रूप योग सब योगों से श्रेष्ठ है और योगियों के मुक्ति का कारण है, फिर यह योग अत्यन्त हित का देनेवाला है, तथा योगियों को सब प्रकार सिद्धि दायक है ॥

इसी योग के प्रसाद से बिन्दु की सिद्धि हो जाती है अर्थात् इस मुद्रा के अभ्यास से शरीर रक्षित कामदेव किसी प्रकार बूंदों के द्वारा नहीं क्रूर सक्ता (रक्षित कामदेव भी सूत्र के सम, यां स्वप्नादि दाय से कभी क्रूर जाता है वह इसके अभ्यास से बँधा रहता है) जब इस प्रकार के महा यत्न से बिन्दु सिद्ध हो जाता है अर्थात् शरीर में कामदेव बँध जाता है तब भूतल में कौनसी बात है तो सिद्ध न हो जावे ? अर्थात् सब सिद्धि प्राप्त हो सकती है क्योंकि कामदेव ही शरीर का राजा है । जब शरीर में कान्ति आ जावेगी तब उसको देख कर लोगो का चित्त

आकर्षित होगा, स्नेह के स्थान पर स्नेह, भय के स्थान पर भय, मनोरथ के स्थान पर मनोरथ सिद्धि जान कर लोग दशभूत हो जायेंगे ॥

सगस्त यह २ भोगों से युक्त पुत्र्य भी यदि इस सुद्रा का अभ्यास करे तो सब प्रकार की सिद्धियां निश्चय करके उसको प्राप्त होती हैं । अर्थात् धनधान्य कुटुम्बादि नाना विभव रहते महात्मापन उसमें नहीं आ सकता, वह भी बहुत नीचातों की आकांक्षा से महा दरिद्र साधु सन्त फकीर वगैरा के मुह की ओर ताका करता है, सो इसके साधन से यह बात न होकर इच्छा की ओर भी बड़े २ विभय धारी ताका करेंगे ॥

शक्तिचालनी सुद्रा ।

मूलाधारेष्वात्मशक्तिः कण्डलीपरदेवता ।

शयिताभुजगाकारा सार्द्धत्रिवलयान्विता ॥४६॥

यावत्सानिद्रितादेहे तावज्जीवःपशुर्यथा ।

ज्ञानंनजायतेतावत् कौटियोगंसमंभ्यसेत् ॥४७॥

मूलाधार में भारतम शक्ति (परमात्मा की ताकत) सब से परे देवता कुण्डलिनी (जिसका घघान वीले कर भाये है) सर्प की तरह साढ़े तीन लपेटे की गुंडरी बाधे से रदी है ॥

जय तक यह देह में सोती रहती है तब तक जीव पशु की तरह अज्ञान घना रहता है, मत् जन्मत् कुछ भी नहीं जान पड़ता । तब तक चाहे कौटि प्रकार योगाभ्यास करे कभी सच्चा ज्ञान नहीं होगा । अर्थात् जैसे पशु की भी घामछोह ककह परपर के न रागैमें विचार रहनाही वही पर इतनाही मात्र रहता है, किंतु उसको ऊपर ४ गण योक्तेभी गण ८ गण जादू है। ता पहिले यह सुकके मातुम नहीं पड़ेगा कि यह योक्ता नेरी

पीठ पर आने से कष्ट दायक होगा। इसके लादनेवाले को इसारो से रोक सके बल्कि लाद देने पर जय नहीं चल सकेगा तब बैठ जावेगा, मार खायगा, नाना प्रकार की दुर्दशा भीगीगा। उधर लादनेवाला भी बिना उरुकी गहमार्थ की वेदना जान उसको गरिबार समस्त के मारते २ एक बार ऐसा मारा कि वह पशु भर गया, अन्तमें उधर पशु अपनी अज्ञानता से दुःख पाय प्राप्त त्याग किया। इधर वह लादने वाला मनुष्य भी अपने काम काशी पशु से हाथ धो बैठता, निगकी हानि किया और ऊपर से पशु हत्या का भागी हो। लोकमें निन्दित हुआ इत्यादि रीतिसे दोनों अर्थात् पशु और मनुष्य द्वारा बर लानवाले ठहरे विचार शक्ति किसी में नहीं आई। यह सब विवेक जय तक कुण्डलिनी शक्ति होती रहती है कभी नहीं होता, यदि वह जेगी रहती है तो चहे योगाभ्यास करे चहे नहीं, चहे कर दिखाने की शक्ति रहे चहे नहीं, पर यह सत् यह असत् ऐसा विज्ञान तो उसके वृद्ध में अवश्य निरन्तर प्रखलित रहता है ॥

उद्घाटयेत्कपाठञ्चयथा कुञ्जिकयाहठात् ।

कुण्डलिन्याप्रबोधेन ब्रह्मद्वारंप्रबोधयेत् ॥४८॥

इसी निमित्त कहा है कि जैसे ताले से बन्द, किशोर को कुञ्जी से घट पद उधारके भीतर पैठा जाता है इसी प्रकार कुण्डलिनीके जागने पर ब्रह्म द्वार अर्थात् मस्तिष्क (मगज) प्रबोध किया जा सका है अर्थात् चिन्तन किया जा सका है कि जिससे सत् असत् का ज्ञान हो जावे ॥ ,

शक्तिचालिनी मद्रा की विधि ।

नाभिंसंवेष्टव्रत्त्रेण नचनग्नावहस्थितः ।

गोपनीयगृहेस्थित्वा शक्तिचालनमभ्यसेत् ॥४९॥

एक घट के द्वारा नाभि देश को सपेटके किसी गुप्त गृह में बैठकर

शक्ति चालनी मुद्रा का अभ्यास करे, किन्तु नग्न होके वहिर्भाग में इस योग का साधन करना उचित नहीं है । अर्थात् यह योग नग्न हो के गुप्त स्थान में करना चाहिये ॥

वितस्तिप्रमितं दीर्घं विस्तारे चतुरंगुलं ।

मृदुलंधवलंसूक्ष्मं वेष्टनाम्बरलक्षणम् ॥५०॥

एवमम्बरयुक्तञ्च कटिसूत्रेण योजयेत् ।

एक बिलस लम्बी और चार अंगुल चौड़ा कोमल और सहन सुफेद वस्त्र से नाभि को वेष्टन करे (भपेटें) और फिर उसी वस्त्र को कटि सूत्र (करपनी) से बांधे ॥

भस्मना गात्रसंलिप्तं सिद्धासनं समाचरेत् ।

नासाभ्यां प्राणमाकृष्य अपाने योजयेद्बलात् ॥५१॥

तावदाकुञ्चयेद्गुह्यं शनैरश्विनिमुद्रया ।

यावद्गच्छेत्सुपुन्नायां वायुः प्रकाशयेद्भ्रूठात् ॥५२॥

भस्म (राख) से शरीर को लेपन करे और सिद्धासन बांध कर बैठे, फिर नासिका के दोनों से प्राण वायु को खींच के बल के सहित अपान वायु के साथ मिलाय दे, जब तक वायु सुपुन्ना नाड़ी के भीतर जाके प्रकाशित न हो तब तक अश्विनी मुद्रा के द्वारा पीरे २ गुह्य प्रदेश को सिकाड़े ॥

तदा वायुप्रयन्धेन कुम्भिकाचभुजङ्गिनी ।

यद्भ्रूश्यासस्ततोभूत्वा ऊर्ध्वमार्गं प्रपद्यते ॥५३॥

इसी प्रकार निश्वास को रोक के कुम्भक प्राणायाम धारण करे, तो

मुजङ्गाकार कुण्डलिनी शक्ति जाग के ऊपर की ओर उठती है । अर्थात् सहस्र दल कमल में परमात्मा के सहित मिल जाती है ॥

विनाशक्ते श्रालनेन योनिमुद्रा न सिद्धयति ।

आदौचालनमस्य योनिमुद्रां समभ्यसेत् ॥५४॥

बिना शक्ति चालिनी मुद्रा के अभ्यास किये योनि मुद्रा कभी सिद्ध नहीं हो सकती इसी प्रथम इस शक्ति चालिनी मुद्रा का अभ्यास कर ले तब योनि मुद्रा अभ्यास करे ॥

इति ते कथितं चण्डकापाले शक्तिचालनम् ।

गोपनीयं प्रयत्नेन दिनेदिने समभ्यसेत् ॥५५॥

चेरष्ठ महाराज कहते हैं कि हे चण्डकापालि ! तुम्हारे सिद्ध यह मुद्रा मैंने कही जिम्हा नाम शक्तिचालिनी है, यह मुद्रा प्रथम से दिन २ अभ्यास करना चाहिये और वह अभ्यास करना गुप्त माय से रहे सहस्र पवित्र न होने पावे ॥

शक्तिचालिनीमुद्रा का फल ।

मुद्रेयं परमागोप्या जरामरण नाशिनी ।

तस्मादभ्यसनंकुर्व्यादोगिभिःसिद्धिकांक्षिभिः ॥५६॥

यह मुद्रा परम गोप्य है (इसकी क्रिया गुप्त करनी चाहिये) इसके द्वारा बुढ़ाई और मृत्यु दोनों नष्ट हो जाती है, इसीसे सिद्धि के चाहने वाले योगियों को इसका अभ्यास अवश्य करना चाहिये ।

नित्यं योभ्यसते योगी सिद्धिस्तस्य करे स्थिताः ।

तस्मिन्निग्रहसिद्धिस्याद्दोगाणां संक्षयो भवेत् ॥५७॥

जो योगी इस मुद्रा को प्रतिदिन अभ्यास करता है उसके हाथ में सिद्धि आ जाती है अर्थात् वह पूरा सिद्ध हो जाता है, और उसी को विग्रह सिद्धि होती है (विग्रह सिद्धि वह है जिसमें विशेष ग्रहण की शक्ति होती है अर्थात् कोई कार्य करे ऊटपट पूरा हो जायगा) और उसके रोगराशि नष्ट हो जाते हैं ॥

तड़ागी मुद्रा ।

उदरं पश्चिमोत्तानं कृत्वा च तड़ागाकृतिः ।

तड़ागीसा परामुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥५८॥

पश्चिमोत्तान अर्थात् उत्तान होकर पड़े और पेट को तड़ाग (तलाब) की तरह गहिरा करे और कुंभक प्राणायाम करे इसी को तड़ागी मुद्रा कहते हैं । यह मुद्रा एक प्रधान गिनी जाती है, इसके द्वारा बुढ़ाई और मृत्यु जीती जा सकती है ॥

सांडूकी मुद्रा ।

मुखं तृमुद्रितं कृत्वा जिह्वा मूलं प्रचालयेत् ।

शनैर्ग्रसदेमृतं तन्मांडूकी मुद्रिकां विदुः ॥५९॥

• मुंह को मुंद्र ले और जिह्वा के मूल को तलुवे के ऊपर की ओर चलावे और धीरे २ सड़क दल कमल निर्गत अमृत पान करे । इसी को सांडूकी मुद्रा कहते हैं ॥

सांडूकीमुद्रा का फल ।

वदितं पलितं नैव जायते नित्ययौवनम् ।

नकेशी जायते पाके चः कुर्यान्नित्यमांडूकीं ॥६०॥

मांडूकी मुद्रा का निरन्तर अभ्यास जो केश कर्तव्य के शरीरमें वलित (चमड़े की निकुड़न) पलित (मांस गलकर हड्डी मात्र का रहना) ये दो शरीर के शिथिल करनेवाले आयु के नाशक भागम नहीं आ सकते और तिरहही युवावस्था भी बनी रहती है, तथा शिर के बाध भी नहीं सकते ॥

शांभवी मुद्रा ।

नेत्रांजनं समा लोकेन आत्मारामनिरीक्षयेत् ।

सा भवेच्छांभवी मुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥६१॥

दोनों भौंहों के बीच में वा दोनों भौंहों को ही स्थिर दृष्टि से अथ लोकांन करके और मन को एक रस करके वही आत्मा राम (परमात्मा) को देखे (माने) सच्चिदानन्द वही धैरे हैं) इसी को शांभवी मुद्रा कहते हैं, यह सब तंत्रों में गुप्त मानी गई है ॥

शांभवी मुद्रा का फल

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।

इयन्तु शांभवी मुद्रा गुप्ताकुलवधूरिव ॥६२॥

४ वेद, ६ शास्त्र (न्यायादि तथा धर्मशास्त्र) १८ पुराण ये सब जैसे गणिका (विरथा) लोग सब जगह प्रसिद्ध रहते हैं, किसी से गुप्त नहीं रहते वैसे ही सामान्य वस्तु हैं, परन्तु यह शांभवी मुद्रा जैसे कुलवधू मही यत्र से सहसा किसी की दृष्टि में नहीं पड़ती वैसे ही जानिये ॥

स एव प्रादिनाथश्च सचनारायणः स्वयं ।

सच ब्रह्मा सृष्टिकारो यो मुद्रांवेत्ति शांभवी ॥६३॥

जो मनुष्य इस शंभवी मुद्रा को जानता है वह आदिनाथ (सबका प्रथम स्वामी) है वही नारायण (शिव समूह की शक्ति) है, और वही जग रचने वाला ब्रह्मा भी है ॥

सत्यं सत्यं पुनस्सत्यं सत्यमूचेमहेश्वरः ।

शंभवांयोविजानीयात् सचब्रह्मनचान्यथा ॥६१॥

जो मनुष्य इस शंभवी मुद्रा को जानता है वही मूर्तिमान ब्रह्म है, इस बात को महादेव की तीन द्वार (त्रिधाचा) करके सत्य कहते हैं इसमें संशय नहीं है ॥

पंचधारणा मुद्रा ।

कथिताशंभवोमुद्रा शृणुष्वपंचधारणां ।

धारणानिसमासाद्य किंनसिद्धुतिभूतले ॥६५॥

घेरण्ड महाराज कहते हैं शंभवी मुद्रा तो कह जाये कथ है चण्ड-कापालि । तुम पंचधारणा मुद्रा सुनो यह पंचधारणा मुद्रा भी पांच प्रकार की है जिन पांचोके प्राप्त होने पर फिर भूतलमें कौन ऐसी बात है जो सिद्ध न हो ? अर्थात् सब कुछ सिद्ध हो जाता है ॥

घनेननरदेहेन स्वर्गपुगमनागमम् ।

मनोगतिर्भवेत्तस्यं खेचरत्वनचान्यथा ॥६६॥

ये पांच प्रकार की धारणा मुद्रा सिद्ध होने पर इन्ही नरदेहमें (बिना नरदेह; जीव की) स्वर्गलोक में जाना जाता हो सकता है, और तब साधन करनेवाली की मनोगति (वही जगह जगह जाय) हो जाती है, तथा घेरण्ड (नाकाश में उड़ने की गति) प्राप्त हो जाती है (पांच प्रकार

की धारणा पहिले कह जाये हैं, जैसे—पार्थिवी १, आम्बरी २, घायत्री ३, भानेयी ४, आकाशी ५,)

पार्थिवीधारणा मुद्रा ।

यत्तत्त्वंहरितालदेशरचितं भौमंलकारान्वितं ।

वेशास्त्रंक्रमलासनेनसहितं कृत्वाहृदिस्थाधिनं ॥

प्राणांस्त्रयिनीयपंचघटिकां चिंतान्वितांधारये ।

देपाशाम्भकरीभवेत्क्षितिजयं कुर्यादधोधारणा ॥६७॥

पृथिवी तत्व का वर्ण हरिताल के समान पीला है, इस पृथिवीतल का बीज लकार है, इसका आकार घीकाना बराबर है, ब्रह्म इसके देवता हैं, योग के प्रभाव से उक्त सब वस्तुओं के सहित हृदय में, ध्यान कर स्थायी करे, उसी समय में प्राणवायु को आकर्षण करके कुंभश के द्वारा पांच घटी (दो घंटे) चित्त न हलने पर्ये धारण किये रहे, इसी स्तंभकरी (श्वान उहरानेवाली) क्रिया को पार्थिवी धारणा कहते हैं, इसका दूसरा नाम अधोधारणा भी है, इसके धारण करनेसे अर्थात् अभ्यास करने से पृथिवी जीती जा सकती है, अर्थात् पृथिवी सम्यक्की कोई भी बाधा हो तो इसके धारण को कुछ भी विघ्न नहीं कर सकती ॥

पार्थिवीधारणामुद्रा का फल ।

पार्थिवीधारणामुद्रा यःकरोतीनित्यशः ।

मृत्युंजयःस्वयंसापि ससिंहोविचरेद्बुधि ॥६८॥

• जो मनुष्य प्रतिदिन (रोज र) इस पार्थिवीधारणा मुद्रा को करता है वही निज मृत्युघ्न हो जाता है, अर्थात् कभी नहीं मरता, और वही सिंह हो के पृथिवी में विहरण करता है ॥

आम्भसीधारणमुद्रा ।

शंखेन्दुप्रतिमञ्जुकुन्दधवलं तत्त्वंकिटालंशुभ ।
 तत्प्रीयूपवकारत्रीजसहितं युक्तंसदात्रिष्णुना ॥
 प्राणांस्तत्रविनीयपंचघटिकां चित्तान्वितोधारये ।
 देपादुःसहतापपापहरिणी स्यादाम्भसीधारणा ॥६९॥

जगत्त्व का यणं शर तथा चन्द्रमा की तुल्य विमल और कुन्द
 पुरप की तरह मज्जल है, और शोभन है, इसकी असूत सदा है और
 यकार युक्तका बीज है, और विष्णु इसके देयता हैं, योग के प्रभाव से
 हृदय के बीच उक्त जल तत्त्वं के समुदाय का ध्यान करे और उसी समय
 प्राणायाम को रोक कर पाच घटी चित्त स्थिर करके कुम्भक प्राणायाम में
 स्थिर रहे, इसीको आम्भसी धारण मुद्रा कहते हैं, यही मुद्रा बड़े २ दुःख
 तारों का तथा पापों का नाश करती है ॥

आम्भसीमुद्रा का फल ।

आम्भसीपरमामुद्रां योजानातिमयोगवित् ।
 जलेचगंभीरेघोरे मरणांतस्यनोभवेत् ॥७०॥

* जो साधक इन शोभनी मुद्रा को जानता है वही योगवित् (योग
 का जाननेवाला) है, यह यदि महा भयानक और गभीर (गहिर) जल
 में भी पड़ जाये तो उसका मरण नहीं हो सक्ता, अर्थात् श्याम साधन
 के प्रभाव से वह डूब नहीं सक्ता ॥

द्वयंतुपरमामुद्रा गोपनीयाप्रयत्नतः ।

प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात्सत्यंत्रचमिचतत्त्वत ॥७१॥

यही शांभवी मुद्रा परम श्रेष्ठ है और यह यज्ञ के महित गुप्त करने योग्य है, इसके प्रकाश से सिद्धि की हानि होती है, चैरण्डजी कहते हैं यह मैं खूब विचार करके सत्य कहता हूँ ॥

सात्यर्ष्य यह कि यदि इसको करनेवाला सब जगह कहे कि हम इस प्रकार की क्रिया करते हैं तो बहुत से लोग इस के करने की अभिलाषा करके उसके पास आयेगे जिसे उसके वित्त की पुंजाग्रता में विग्रह हलेंगे हमसे गुप्त रीति से साधन करने पर कोई भी बाधा नहीं पहुंच सकती और हम से अभ्यास बढ़ जायेगा, परन्तु जो नितान्त दृढ़ हो इसको सीखा चाहे उसके लिये गुप्त नहीं हो सके, यही सात्यर्ष्य चैरण्ड महा-राम का है ॥

आग्नेयी मुद्रा ।

यन्नाभिस्थितमिन्द्रगोपसदृशं, योजंत्रिकोणान्वितम् ।

तत्त्वतेज मयं प्रदीप्त मरुणं, रुद्रेण यत्सिद्धिदम् ॥

प्राणांस्तत्र विनीयपंचघटिकां, चिह्नान्वितंधारये ।

देवाकाल भगोरभीति हरिणी, वैश्वानरीधारणा ॥७२॥

अग्नि तत्व का स्थान नाभी स्थल है, इसका मण्डल इन्द्रगोप कीट (धोरबहुटी) की तरह लगाना है, रकार इसका बीज है, इसका आकार त्रिकोण और रुद्र इसके देवता हैं, यह तत्व तेज का मुद्र है यह दीप्त-पान (प्रकाश करने वाला) और सिद्धि दायक है, योग बल से इस अग्नि तत्व को उदय कराने के पुंजाग्र वित्त हो पांच घटी तक कुम्भक प्राणायाम से प्राण वायु को धारण करे । इसीका नाम आग्नेयीधारणा मुद्रा है; इसके 'साधना' करने से संसार का भय दूर हो जाता है, और अग्नि के द्वारा साधक की मृत्यु कभी नहीं हो सकती ॥

आग्नेयी धारणा मुद्रा का फल ।

प्रदीप्ते ज्वलितेन्नहौ पतितो यदि साधकः ।

एतन्मुद्रा प्रसादेन सजीवति न मृत्युभाक् ॥७३॥

यदि साधक सूक्ष्म भरती हुई धकधकाती आग में पड़ जावे तोभी इस आग्नेयीधारणा मुद्रा के प्रसाद से जीता रहेगा, कभी मृत्यु का भागी नहीं होगा ।

वाय्वीधारणा मुद्रा ।

यद्धिन्नांजनपुंज सन्निभमिदं, धूम्रावभासंपरम् ।

तत्त्वंसत्यमयं यकारमहितं, यत्रेश्वरी देवता ॥

प्राणांस्तत्रचिनीयपंचघटिकां चित्तान्वितांधारये।

देपास्त्रेगमनं करोति यमिनां, स्याद्वाय्वीधारणा ॥७४॥

वायु तत्व का वर्ण घिसा हुआ अङ्गुन (गुम्मा) तथा पुर्व की तरह है, यकार इसका चीज है और ईश्वर इसके देवता हैं, यह तत्व सत्य-गुण गय है, योग के प्रभाव में इस वायु तत्व को उदित करायके एकाग्र बित हो प्राण वायु को आकर्षण कर कुम्भक माणायाम के द्वार पाच घड़ी धारण करे, इसी का नाम वाय्वी मुद्रा है, यह मुद्रा साधन करने वालेको वायु में कभी मृत्यु नहीं हो सकती, और साधक की शक्ति आकाश ज्ञाने ज्ञाने की भी हो जाती है ।

वाय्वीधारणा मुद्रा का फल ।

इयत्तु परमा मुद्रा जरा मृत्यु विनाशिनी ।

त्रायुनाम्रियते नापि से च गति प्रदायिनी ॥७५॥

यह मुद्रा परम अष्ट जरा (बुढ़ाई) और मरण इन दोनों को नष्ट कर डालती है और साधक वायु के किसी प्रकार के कोप से नहीं सर सकता, और यह मुद्रा आकाश गमन की शक्ति को भी देनेवाली है ॥

सठायभक्तिहोनाय नदेयायस्यकस्यचित् ।

दत्तेचसिद्धिहानिः स्यात्सत्यं वचमिचखडते ॥७६॥

चेरखड जी कहते हैं कि हे चखडकापालि ! इस मुद्रा की विधि सठ (जो लोगों को ठगने के लिये चाहे) को और भक्ति हीन (जो चाहे कि सिर्फ जान कर आचरण न करे, लोगों को धोखा दे सिद्धाई फेलावे) को कभी नहीं बताना चाहिये, और भी जिस तिम को कभी नहीं देना चाहिये, यदि दे तो देने वाले की सिद्धि में हानि होती है, अर्थात् उन सठ आदि की कलाई खुलने पर यथाचे सिद्ध को भी लोग सठ आदि समझ कर धापा डाला करते हैं, चेरखड जी प्रतिज्ञा करते हैं कि हम यह तुम से सत्य कहते हैं ॥

अकाशी धारण मुद्रा ।

यत्सिन्धुधरशुद्धवारिसदृशं व्योमंपरंमासितं ।

तत्त्वंदेवसदाशिवेनसहितं बीजंहकारान्वितं ॥

प्राणांस्तत्रविनीयपंचघटिकां चित्तान्वितांधारये, ।

देपामोक्षकपाटभेदनकरी कुर्यान्निभीधारणा ॥७७॥

आकाशतत्व का वर्ण समुद्र के विशुद्ध जल की तरह प्रकाशित होता है, सदाशिव इसके देवता हैं, हकार इसका बीज है, इसी आकाश तत्व को सदाशिव के सहित योग प्रभाव से उदित कर एकाग्र मन हो ध्यान करे और उसी समय प्राण वायु को खींच कर कुम्भक प्राणायाम से पाँच

यही धारण क्रिये र है, इसी को आकाशी धारण कहते हैं, यह मुद्रा मोक्ष के क्रियाओं को खोल देती है, अर्थात् साधक शीघ्र मुक्ति हो जाता है ॥

आकाशी धारण मुद्रा का फल ।

आकाशीधारणामुद्रां योवेत्तिसैवयोगवित् ।

नमृत्युजीयतेतस्य प्रलयेनावसीदति ॥७८॥

जो मनुष्य आकाशी मुद्रा को जानता है वही नियम योग का जाननेवाला है, उसकी मृत्यु भी किसी से नहीं होती और वह प्रलय होनेपर भी त्यों का त्यों बना रहता है ॥

ये पंच धारण मुद्रा समाप्त हुईं ।

अश्विनी मुद्रा ।

आकुंचयेद्गुद्वारं प्रकाशयेत्पुनःपुनः ।

साभवेदश्विनीमुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी ॥७९॥

मार्चक फिर २ अपने गुह्य द्वार को सिकोड़े और दो-दो बार इसी का नाम अश्विनी मुद्रा है, यह मुद्रा शक्ति (ताकत) को जगाने वाली है ॥

अश्विनी मुद्रा का फल ।

अश्विनीपरमामुद्रां गुह्यरोगविनाशिनी ।

बलपुष्टिकरीचैव अकालमरणं हरेत् ॥८०॥

यह अष्ट अश्विनी मुद्रा मुद्रा के जितने रोग हैं संघको मर्त्त करती बल और पुष्टि का यदाती और अकाल मृत्यु को भी हर लेती है ॥

पाशिनी मुद्रा ।

कण्ठे रुण्ठे क्षिपेत्यादौ पाशवं दृढं शन्यने ।

साएव पाशिनीमुद्रा शक्तिप्रयोध कारिणी ॥८१॥

देहने पाव गण्ड (गण्डन) की पीठमें हाथ कर लीसे पराण (रस्ते) से बाधा जाता है ऐनादी दृढ (मजबूती से) बाधे, यही पाशिनी मुद्रा कही जाती है, यह भी शक्ति (ताकत) जगाने वाली है ॥

पाशिनी मुद्रा का फल ।

पाशिनी महतीमुद्रा श्रुत्वा पुष्टिं विधासिनी ।

साधनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिकांक्षिभिः ॥८२॥

यह पाशिनी एक बड़ी भारी मुद्रा है, यह बल और पुष्टि देनाको बढ़ानेवाली है, सिद्धि के चाहनेवाले साधक लोग इसका अवश्य बड़े धन से साधन करें ॥

काकी मुद्रा ।

काक चंचुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः ।

काकी मुद्रा भवेत्सुखा सुखेन विनाशिनी ॥८३॥

जपने मुख को पीछे की टोच की तरफ लनायके धीरे २ वायु पान करे इसी का नाम काकी मुद्रा है । यह समय प्रकार के रोगों को गढ़ जाता है ॥

- काकीमुद्रा परामुद्रा रवे तत्रेषु गोपिता ।

अस्य प्रसादमात्रेण काकवल्लीरोगो भवेत् ॥८४॥

यह काकी मुद्रा बहुत उत्तम है और सब तन्त्रों में गोपनीय है, इस के प्रसाद मात्र से मनुष्य काक की तरह रोग रहित हो जाता है ॥

मातङ्गिनी मुद्रा ।

कण्ठमग्नेजलेस्थित्वा नासाभ्यांजलमाहरेत् ।
 मुखान्निगमयेत्पश्चात् पुनर्वक्त्रेण चाहरेत् ॥८४॥
 नासाभ्यां रेचयेत्पश्चात् कुर्यादेवं पुनः पुनः ।
 मातङ्गिनी परामुद्रा जरा मृत्यु विनाशिनी ॥८५॥

गला पर्यन्त जल में खड़ा हो कर पहिले नाक से जल को खींचके मुख से गिराये दे, फिर मुँह से भी जल को खींच के पीछे नाक के दोनो छेदों से बहाय दे, इसी प्रकार बार २ खींचे और फेंके, इसी का नाम मातङ्गिनी मुद्रा है । यह मुद्रा जरा (बुढ़ाई) और मृत्यु को नष्ट कर दालती है ॥

मातङ्गिनी मुद्रा का फल ।

विरले निर्जने देशे स्थित्वा चैकाग्रमानसः ।

कुर्यान्मातङ्गिनी मुद्रां मातङ्गइव जायते ॥८६॥

साधक निर्जन स्थानमें स्थित हो एकाग्र चित्त करके इस मातङ्गिनी मुद्रा को साधे तो मातङ्ग (हाथी) की तरह बली हो जावे ॥

यत्रयत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्त मश्नुते ।

तस्मात्सर्व प्रयत्नेन साधयेन्मुद्रिकां परां ॥८७॥

इस मुद्राके साधन करनेवाला योगी जहाँ जहाँ स्थित रहेगा, वहाँ

वही अत्यन्त सुख का भोगी होगा, इस लिये सब तरह से प्रयत्न करके इस श्रेष्ठ मुद्रा का साधन करना चाहिये ॥

॥ ११० ॥ **भुजंगिनी मुद्रा ।**

यक्त्रंकिञ्चित्सुप्रसाय्यं चानिलंगलयोपिवेत् ॥
सामवेदुजगीमुद्रा-जरासृत्पुत्रिनांशितोत्रादत्रा ॥

मुद्रा को, किञ्चित् (थोड़ा सा), कैलाप के गुठे के द्वारा वायु पान करी (गुला में वायु का घड़ा जोर से लगी) इसी को भुजंगिनी मुद्रा कहते हैं । यह जरा (मुद्राएं) को नष्ट करती है ॥

भुजंगिनी मुद्रा का फल ।

यावच्च उदरे रोगः मंजीर्यादिविशेषस्तथा ॥

तत्सर्वनाशयेदाशु यत्र मुद्रा भुजंगिनी ॥११॥ -

“ उदर (पेट) में कितने रोग हों, विशेषकर मंजीर्य हो तो इस मंत्रों को बहुत बलपूर्वक यह भुजंगिनी मुद्रा मष्ट कर हासिल की है । तात्पर्य यह कि यहाँ कहीं रोग नौका आगपुड़े कि कोई दवा नहीं, कोई घेय नहीं, या किसी प्रकार की सहायता नहीं कि पेट की पीडा आदि रोग जैतु हों और दुःख बड़ा भारी हो रहा है यहाँ इस मुद्रा के करने में अवश्य तुरंत मन्त्र रोग नष्ट हो गति है, यह मुद्रा बहुत महज है, जिसने कभी मंत्रों में भी नहीं किया यह भी सावधान होके करे तो कार्यदा यहुन भक्ता है ॥

अथ समस्त मुद्राओं का फल कहते हैं ।

इदं न्तु मुद्रापटलं कंपितं चंडकपाले ।

यत्प्रभंसधंसिद्धानां जरामरणनाशनम् ॥१०॥

घेरण्ड मुनि जी कहते हैं कि हे चण्डकपालि ! मैंने तुम्हारे निकट यह मुद्रा पटल (मुद्राओं की गिनती और विधि आदि) कहा यह पटल समस्त सिद्धों का मिय है और जरामरण को नष्ट करनेवाला है ॥

सठायंभक्तिहीनात्र नदेयंयस्यकस्यचित् ।

गोपनीयंप्रयत्नेन दुर्लभंमरुतामपि ॥११॥

जो सठ है और भक्तिहीन हो उसको ये सब मुद्रा कभी नहीं देना चाहिये, और जिस जिस को भी देना उचित नहीं है इसका यत्न से गुप्त रखना चाहिये, ये सब मुद्रा देवता को भी दुर्लभ हैं ॥

ऋजुवैशांतचित्ताय गुरुभक्तिपरायच ।

कुलीनायप्रदातव्यं भोगमुक्तिप्रदायकम् ॥१२॥

ये सब मुद्रा भोग और मुक्ति दोनों देनेवाली हैं इससे ऐसे विचार से लोगों को घताना चाहिये जोकि ऋजु (कोमल सुभाव) हों, जो शान्त चित्त (चञ्चलता, रणित) हो जो गुरु भक्ति पर (उपदेष्टा के वचन को मानने वाले) हों, और जो कुलीन (जिसको अपने नामी पुरुखों की बदनामी के हरसे उनकी उत्तम लीक पर चले जाने में दृढता हो) वहाँ को देना चाहिये । तात्पर्य यह कि कोमल चित्त नहीं है और सिद्ध हो गया तो सिवाय ससार को कष्ट देने के और कुछ भी उत्तम कार्य नहीं करेगा यदि चञ्चल हुआ तो उसको इन आसन मुद्रादि से सिद्धि ही नहीं प्राप्त होगी, यदि उपदेष्टा के वचन को न मानने वाला हुआ तो भी क्रिया, सटपटाग करने से कुछ भी सिद्धि हासिल नहीं होगी, और यदि अपने नामी पुरुखों की बदनामी को नहीं हरैगा तो वह बड़े अभयानक अत्याचार करके अपनाही श्रेय प्राप्त करेगा ऐसे २ लोगों को इस योग विद्या का घत ना उठाटा फलदायक होता है अर्थात् भोग वस्तु की

क्रिया तो ग्रहण करेंगे परन्तु मुक्ति जो परम पुण्यार्थ है उसके नहीं प्राप्त कर सकेंगे, इसी निमित्त मध्व जगह "नदातव्य नदातव्य" कहा है ॥

मुद्राणां पटलं ह्येतत्सर्वं व्याधि विनाशनम् ।

नित्यमभ्यास शीलस्य, जटराग्निविबुधुनम् ॥१३॥

यह मुद्रा पटल मध्य व्याधि को नष्ट करनेवाला है, और जो नित्य अभ्यास करता है उसके जठर की अग्नि स्वयं बढ़ाती है ॥

तस्य नोजायतेमृत्यु नास्य जरादिकं तथा ।

नाग्निजल भयंतस्य वायोरपि कुतोभयम् ॥१४॥

जो मनुष्य मुद्रा साधन करते हैं उनको न मृत्यु न बुढ़ाई, नादि, न आग, न पानी, न वायु यह मध्य कभी नहीं भय पहुंचाया करते हैं ॥

कासःश्वासःप्लीहकुष्ठं श्लेष्मरोगाश्चविंशतिः ।

मुद्राणां साधनाञ्चैव विनश्यन्ति न संशयः ॥१५॥

मुद्रा साधन करने से, काम (खामी) श्वाम (दमा) सीहा (विलह) कुष्ठ (कोड़ू) तथा बीज प्रकारके श्लेष्मा (बक जो) रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

बहुनाकिमि होक्तेन सारं यच्चिन् च चण्डते ।

नास्तिमुद्रासमंक्रिञ्चिव सिद्धिदक्षितिमण्डले ॥१६॥

नेरवह महागण्ड कटते हैं, हे चण्डकपालि ! तुम्हारे निबटं बहुत कहने से क्या है, किन्तु सार याग में जड़ता हूं कि इस मूलफलमें मुद्रा के समान कोई भी वस्तु सिद्ध देने वाली नहीं है ॥

इति घोरगडसंहितायां घोरगड षण्डकपालि सम्बन्धे षटस्योपग प्रकाश मुद्रा प्रयोगानाम तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोपदेशः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रत्याहारकं मुत्तमम् ।

यस्याविज्ञानमात्रेण कामादि रिपुनाशनम् ॥१॥

वेदेषु महाराज कहते हैं कि हे षण्कपालि ! मुद्दा कथनके अनन्तर अथ इन तुमसे प्रत्याहार मुत्तम योग कहते हैं, इसके विशेष ज्ञान मात्र से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मंद, सुख्यं ये छः रिपु जो प्राणियोंको इस संसार में संतपि रहते हैं, वे विनष्ट हो जाते हैं ॥

अतस्ततो नियम्येत दात्मन्येव वशंनयेत् ॥२॥

जिस विषय में विसर्ग प्रवृत्त हो के समन करे, प्रत्याहार के द्वारा उस २ विषय से मन को निवृत्त (लौटा) करके अपने वश में लाना चाहिये ॥

पुरष्कारं तिरष्कारं सुश्राव्यं भावंमायकम् ।

मनस्तस्मान्नियम्येत दात्मन्येव वशंनयेत् ॥३॥

यह पुरष्कार (जादू) है यह तिरष्कार (निरादर) है किसी में मनको कभी नहीं कमाना चाहिये, इसी प्रकार यह सुश्राव्य (कानको अति धीर शब्द) है, यह अश्राव्य (कानों को अप्रिय) है, किसी में मनको न फंसाये, तात्पर्य यह, कि गीतादि सुन कर, वा स्तुति वाद आदि सुनकर बहुत सुगुण हो, मन को भुलाय नहीं देना और न भयानक चिन्तार तथा निन्दा वाद आदि सुनकर विकल हो जाना, इस प्रत्याहार योग का यही साधन है कि मन सबों से मन को निवृत्त करके अपने वश में रखना, अर्थात् सुनना सब पर मनको एक रस स्थिर रखना ॥

सुगन्धोवापिदुर्गन्धो घ्राणेपुजायतेमनः ।

तस्मात् प्रत्याहरेदेतदात्मन्येववशंनयेत् ॥१॥

चहे सुगन्ध है, चहे दुर्गन्ध यदि घ्राण (सूँघने) में भाये और मन वार २ चाहे तो मन को वहाँ से लौटार के अपने वश में करेगा ॥

मधुरास्लकृतिक्लादिरसैर्गामियदीमनः ।

तस्मात्प्रत्याहरेदे दात्मन्येववशंनयेत् ॥५॥

चहे मधुर (मीठा) है, चहे अस्ल (गुहा) है, चहे कृति (तीता) है, चहे कषाय (घाकस) है, चहे कटु (कटुमा) है, चहे लवण (लोना) है, यदि मन इन के रसों को ओर दीड़े तो वधर से लौटार के मनको आत्मा के वश में लाने का अभ्यास करे वही का नाम प्रत्याहार है ॥

इति श्री धिरण्डसंहितार्या धिरण्डे चण्डकपालि सिद्धे

प्रत्याहार प्रयोगो नाम चतुर्थोपदेशः समाप्तः ॥१॥

॥१॥

अथ पंचसोपदेशः ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामि प्राणांयामस्ययाद्विधिम् ।

यस्यसाधनमात्रेण देवतुल्योभवेत्तरः ॥१॥

धिरण्ड महाराज चण्डकपालि से कहते हैं कि हम प्रत्याहार कहतुने अथ इसके अन्तर प्राणायास की तो विधि है उसे कहते हैं कि इसके साधन करतेही मनुष्य देवता के समान हो जाता है ॥

प्रादौस्यानंतयाकालं मिताहारंतवापरम् ।

नादोशुद्धिंचतत्पश्चात्प्राणायामंचसाधयेत् ॥२॥

प्राणायाम साधन करने के पहिले साधन करने का स्थान ठीक करना चाहिये फिर उन्ही प्रकार समय भी नियत करना चाहिये । फिर उसके बाद मित्ताहार (एक प्रमाण से सदा भोजन करना) साधन करना चाहिये । फिर उसके बाद नाडी शुद्धि करनी चाहिये । ये चार बातें प्राणायाम के साधको को अवश्य साध लेना चाहिये ॥

। स्थान निर्णय ।

दूरदेशे तथा रण्ये राजधान्यां जनांतिके ।

योगारभनकुर्वीत कृतेनसिद्धिदोभवेत् ॥३॥

मनुष्य बस्ती से दूर, तथा जन में भी राजधानी (राजा के रहने की नगरी) में, बहुत जनो के समीप । इन स्थानो में योगारभ (प्राणायाम साधन) कभी नहीं करना चाहिये, करे तो सिद्धि कभी न हो ॥

अविश्वासं दूरदेशे अरण्ये रक्षि वर्जितम् ।

लोकारण्ये प्रकाशश्च तस्मात् त्रीणि विवर्जयेत् ॥४॥

यदि दूर देश में जाकर योग साधन करे तो वहा किसी का विश्वास नहीं कि कौन योगी की ठीक र रक्षा करेगा । यदि जन में योगाभ्यास करे तो वहा भी कोई रक्षक नहीं मिल सकेगा यदि बहुत से मनुष्यो के बीच योग साधन करे तो सब प्रगट रहैगा जिस्के लोग देखन आया करेंगे और उसके सन् स्थिर नहीं धान पायेगा । इसीलिये ये तीन अवश्य वर्जित हैं । राजधानी को विशेष बाजत इसलिये ही किया की वहा जहा तक बचाव सके बचावे परन्तु यदि राजधानी ही का रहने वाला मनुष्य योगाभ्यास करे तो वह कहा जा सता है २ क्योंकि उधर दूर देश भी वर्जित कर आये हैं इस राजधानी का मनुष्य यदि योगाभ्यास करे तो राजधानी विशेष वर्जित नहीं है । वर्जित करने का कारण यह है

प्राणायाम साधन करने के पहिले साधन काने का स्थान ठीक करना चाहिये फिर उम्मी प्रकार समय भी नियत करना चाहिये । फिर उसके बाद मित्ताहार (एक प्रमाण से सदा भोजन करना) साधन करना चाहिये । फिर उसके बाद नाड़ी शुद्धि करनी चाहिये । ये चार बातें प्राणायाम के साधको को अवश्य साध लेना चाहिये ॥

स्थान निर्णय ।

दूरदेशे तथारग्ये राजधान्यां जनांतिके ।

योगारंभंनकुर्वीत क्रुतेनसिद्धिदोभवेत् ॥३॥

मनुष्य सुस्ती से दूर, तथा जन-में भी राजधानी (राजा के रहने की नगरी) में, बहुत जनो के समीप । इन स्थानों में योगारंभ (प्राणायाम साधन) कभी नहीं करना चाहिये, करे तो सिद्धि कभी न हो ॥

अविश्रवांसदूरदेशे अरग्येरक्षिबर्जितम् ।

लोकारग्ये प्रकाशश्च तस्मात्त्रीणिविबर्जयेत् ॥४॥

यदि दूर देश में जाकर योग साधन करे तो वहा किसी का रि नहीं कि कौन योगी वही ठीक रक्षा करेगा । यदि वन में योग करे तो वहा भी कोई रक्षण नहीं मिल सकेगी यदि बहुत से लोग योग साधन करे तो सब प्रगट रहेगा जिस्से लोग दूर करेंगे और तस्से गन् स्थिर नहीं होग पायेगा । इसीलिये वे ती बर्जित हैं । राजधानी को विशेष बार्जित इच्छलिये । ही किया जहा तक बधाय सके यथावे परन्तु यदि राजधानी ही का र मनुष्य योगाभ्यास करे तो वह कदा का मत्ता है ? थोरेके लघ भी बर्जित कर आवे हैं, वस्तु राजधानी का मनुष्य यदि योगा ता राजधानी विशेष बर्जित नहीं है । बर्जित करने का/कार

काल निर्णय ।

हेमन्तेशिशिरेश्रीष्मे वर्षायांचञ्चतौतथा ।

योगारम्भंनकुर्वति कृतेयोगोहिरोगदः ॥८॥

हेमन्त ऋतु, शिशिर ऋतु, वीष्य ऋतु और वर्षाऋतु, इनमें योगारम्भ कभी नहीं करना चाहिये, यदि करें तो वह योग-रोग का देने वाला हो जायगा ॥

वसन्तेशरदिप्रोक्तं योगारम्भं समाचरेत् ।

तथायोगीभवेत्सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद्भ्रुवम् ॥९॥

वसन्त ऋतु और शरद ऋतु में योगारम्भ करनेको मुजियोंने लिखा है इसके इन्हीं दो ऋतुओं में योगारम्भ करना चाहिये, इनमें करने से योगी सिद्ध हो जाता है और रोगों से भी निश्चय मुक्त हो जाता है ॥

चैत्रादिफाल्गुणान्ते च माघादिफाल्गुणान्तिके ।

द्वौ द्वौ मासौ ऋतुभोगौ अनुभावश्चतुश्चतुः ॥१०॥

चैत्र के महीना से लेकर फाल्गुण के अन्त तक छः ऋतु तथा माघ मास के आदि करके दूसरे वर्ष के फाल्गुण तक चौदा महीनेके भी छः ऋतु आधी गई हैं । इस प्रकार दो २ मास की एक २ ऋतु—तथा दो मास और दस दिन की ऋतु अनुभव की जाती हैं ॥

वसन्तश्चैत्रवैशाखौ ज्येष्ठाषाढश्रुश्रीष्मकौ ।

वर्षाश्रावणभाद्राभ्यां शरदाश्विनकार्तिकौ ॥११॥

वैत और वैशाख ये दो महीना वसन्त ऋतु कहे जाते हैं, जेठ और आषाढ ये प्रीष्म ऋतु, सावन और भादो ये वर्षा, कुमार और कार्तिक

ये शरद ऋतु, अगहन और पूष ये हेमन्त, माघ और फागुन ये शिशिर ऋतु कहे जाते हैं ॥

अनुभावं प्रवक्ष्यामि ऋतुनाञ्जयथोदितं ।

माघादिमाघवान्तेषु वसन्तानुभवश्चतुः ॥१२॥

चैत्रादिचापाढान्तञ्च निदाद्यानुभवश्चतुः ।

आपाढादिचाशिवनान्तः प्रावृषानुभवश्चतुः ॥१३॥

भाद्रादिमार्गशीर्षान्तं शरदीनुभवश्चतुः ।

कार्तिकादिमाघमांसान्तं हेमन्तानुभवश्चतुः ॥१४॥

मार्गादिचतुरोमासान् शिशिरानुभवम्बिदुः ।

चिरगुड जी चण्डिकापालि से कहते हैं कि जिन २ महीनों में जो २ ऋतु अनुभव से जानी जाती हैं वामी लक्षणोंसे मिलती हैं उनके कहते हैं, जैसे:—माघ से वैशाख तक चार महीना वसन्त ऋतु अनुभव होती है, फिर उसी के भीतर और उसके बाहर जैसे चैत्र से आषाढ़ पर्यन्त चार महीना ग्रीष्म ऋतु अनुभव होती है, इसी तरह आषाढसे ले कुमार पर्यन्त चार महीना वर्षा ऋतु अनुभव होती है, तथा भाद्रोमें लेकर अगहन पर्यन्त शरद ऋतु का अनुभव होता है, कार्तिक से लेकर माघ तक हेमन्त ऋतु का अनुभव होता है, अगहन में लेकर फागुनतक चारमहीना भीत ऋतु का अनुभव होता है; इसी प्रकार अनुभव की ऋतु जानना चाहिये, और उन्हीं के हिसाब से योगारम्भ करना उचित है ॥

वसन्तेवापिशरदि योगारम्भः समाचरेत् ।

तदायोगो भवेत्सिद्धो विनायासेन कथ्यते ॥१५॥

बसन्त ऋषभा शरद रितु में योगारम्भ करे तो बिना परिश्रम योग सिद्ध हो जावेगा यह योगियों के द्वारा कहा गया है ॥

मिताहार ।

मिताहारंविनायस्तु यागोरम्भस्तुकारयेत् ।

नानारोगोभवेत्तस्य किञ्चिद्योगोनासिद्ध्यति ॥१६॥

जो मनुष्य मित्त अर्थात् एक तौल प्रांथ कर भोजन नहीं करता और योगारम्भ करता है, वह नाना प्रकार के रोगों से पीड़ित होता है और उसको कुछ भी योग विद्या का लाभ नहीं होता ॥

सात्यप्यं—भोजन की साधना प्रधान योग है, भोजनही से देह प्रति पालित होता है और भोजन की गड़बड़ी हुई तो बहुत जल्द मनुष्य मर भी जाता है, इसलिये घेरपद महाराज ने भोजन को सम भाव रखने के लिये इस मिताहार का प्रकरण उठाया है, जो शक्त योगाभ्यास किया चाहे वह तो मिताहार का साधना अवश्य करे परन्तु जो बिना योग साधेही अपने शरीर को निरोग रक्ता चाहे वे भी मिताहार करें तो पाखण्डी योगियों से फल गुणा उत्तम रहेंगे, कोई शक्त अत्रमाय के देख ले कि जो एक वर्ष मिताहार करता है उसके कोई व्याधि शरीर में आती है या नहीं हम दृढ़ता से कहते हैं कि मिताहार की बराबर और कोई भी शरीर रत्ना के लिये उपयोगी औषध नहीं है, जिन्होंने मिताहार नहीं किया चाहे कोई औषध खाय पर तादृश निरोगता नहीं होगी त्रिमा कि मिताहार से हो सकती है इसे अरोग्य चाहनेवाले पुरुष मिताहार अवश्य करें ॥

शाल्यन्नयवपिंडंवा गोधूमपिंडकंतया ।

मुद्गंमापचणकादि शुभ्रंचतूपवर्जितं ॥१७॥

जो कोई योग साधन किया चाहें वे श्यामी (उत्तम धान के) चावल
या यव पिह (जब पिसान की रोटी वा चेतुष्पा) तथा गोहृं की रोटी,
और भूंग अथवा नर्द वा चना आदि की दाल, जो सूख साफ और भूसी
रहित भोजन करें ॥

पटोलंपनसंमानं कक्कोलंचशुकाशकं ।

द्राढिकांकर्कटीरम्भां दुम्बरीकंटकंटकं ॥१८॥

परवर, कटहर, मान (अरुंड की तरह बड़े पत्ते का होता है और
उसकी जड़ बड़े की तरह बड़ी लम्बी होती है) कक्कोल (करीला) वैर,
करज कँकरी, केला, गुनर, कँटीली पीराई आदि का साग, इत्यादि
वस्तु खावे ॥

आमरम्भां बालरम्भां रम्भादण्डंच मूलकम् ।

वार्ताकीं मूलकंन्द्राद्धिं योगी भक्षण माचरेत् ॥१९॥

कच्चे केले की तरकारी, केले की बतिया (जो फूलों में लगी हो)
केला का दूध (बीज का नरम गधीका) केला की जड़, भाटा, मूली, इन
सब की तरकारी योगी खावे ॥

वाल शकं काल शकं तथा पटोल पत्रकम् ।

पञ्चशकं प्रशंसीयाद्वास्तुकं हिलमोचिकां ॥२०॥

पाल शाक अर्थात् कोमल कोई भी प्रथमित भाग हो, काल शाक
अर्थात् त्रिभ समय में जो भाग चुखा करना पड़े, पटोल पत्र अर्थात् पर-
वर की पत्ती का भाग (यह खाने में कड़ु होता है परन्तु सब से ज्यादा
निरोध होता है और खाते २ अभ्यास पढ़ने पर भयभीत भी लगने लगता
है) पञ्चशक का भाग और हिलचा भाग ये पाक प्रकार के साग योगियों
के लिये पराहनीय हैं ॥

सुदं सुमधुरं स्निग्धं उदराद्धं विवर्जितम् ।
भुज्यते सुरसंप्रीत्या मिताहार मिमंविदुः ॥२१॥

शुद्ध अर्थात् साफ, सुन्दर मधुर (जो खानेमें मिठाया) स्निग्ध (जिसमें तलाई न हो) सुरस (जिसका रस खराब न लगे) ऐसे भोजन को योगी लोग वही प्रीति से भोजन करें और वह भोजन आधा पेट खावे आधा खाली रखे । इसी को मिताहार कहते हैं ॥

तात्पर्य—आधा पेट खाने की विधि से बहुत से मरभुक्छे योगी-प्यासी लोग यह सोचेंगे कि इन आधापेट खाकर कैसे बचेंगे ? उनको यह धीरज दिया जाता है कि जब शुद्ध, सुरस और स्निग्ध आदि पदार्थ प्रीति से खावेंगे और बिना आधाही पेट खावेंगे तो वह आसन प्राणा-यामादिक क्रियाओं से कूटपट पचकर प्राण पोषक रस उत्पन्न करेगा, वह रस जब नाडियों में दौड़ कर शरीर में व्याप्त हो जावेगा तो थोड़े ही देर के बाद सन्तोष लाभ होगा । फिर ज्यों २ रोज २ इसी प्रकार आधे पेट खाने का अभ्यास करेगा त्यों २ सन्तोष भी बढ़ता जावेगा और उसका मुख भी बढ़ता जावेगा । यदि आज पूरा पेट खाया जाता है तो वह आसन प्राणायाम आदि क्रियाओं के रगड़से आनाशय को कष्ट पहुंचाता है और कूटपट आनाशय के नीचे पंच कर अंतर्द्वियों को राह से भल हो कर निकल जाता है उल्ले प्राणपोषक रस पैदा नहीं उत्पन्न होने पाता, सब यही मिताहार का प्रयोजन है कि जो अन्नादि खाये वह उत्तमता से पच जावे, उल्ले विकार रस पैदा न हो के शरीर को आरोग्य रखे ॥

अन्नैः पूरयेदद्धं तोये ननु तृतीयकम् ।

उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेद्वायु चारणे ॥२२॥

पेट का आधा भाग अन्न के भोजन से पूरा करना चाहिये, तीसरा

भाग जल पीकर पूरण करना चाहिये, इसी प्रकार उदर का चौथा भाग वायु चलाने फिराने के लिये ठोढ़ रखना चाहिये ॥

- कट्वम्ल लवणांतिकं भृष्टञ्च दधितक्रकम् ।
 शाकोत्कटं तथा मद्यं तालञ्च पनसन्तथा ॥२३॥
 कुलस्थं मसरं पाण्डुं, कुप्मांडं शाकदण्डकम् ।
 तुम्बीकोलकापित्यञ्च, कंटविल्वंपलाशकम् ॥२४॥
 कदम्बं जम्बीरं विम्बं लकूषं लशुनं विपम् ।
 कामरङ्गं पिथालञ्च हिङ्गुशाल्मलिके मुकम् ॥
 योगारम्भे वर्जयेत् पथुस्त्री वन्दि सेवनम् ॥२५॥

कटु (कड़ू) अस्र (खटाई) लवण (नोनखरा, नमकीन) तिक्त (तीता) ये चार प्रकार के रस युक्त पदार्थ योगारम्भ में ठोढ़ देना चाहिये, भृष्ट (भूजा खदीना) दही, मट्ठा, घृणित या खराब शाग, मदिरा, ताड़ फल तथा उसका रस, पक्का कटहर, कुलत्थ (फुरपी की दाल) मसूर की दाल, पट्टेरा नामक फल, कुम्हड़ा, मर्था डाटे या अरुई आदि के पुझे, लीकी, घैर, कैया, जिस घेल में कांटा हों, पलाश, कदम्ब के फल, जम्बीरीनीचू, कुंदुरु, लकूष (लहसुन) मूखाल (कमल की हठी) कमरख, प्याज होंग, रोमर के फल, केमुच (गोभी) योगारम्भ काल में ये भी सब द्रव्य भोजन में यजित है, इसी प्रकार पथ का चलना, स्त्री प्रसङ्ग तथा भाग का तापना आदि भी यजित हैं ॥

सात्वयं यह है कि जब योगाभ्यास की क्रिया आरम्भ की जायगी तब शरीर को ये सब वस्तुये रोग प्राप्त कर देंगे परन्तु जब योगाभ्यास की सामर्थ्य हो जायगी तब भी भिन्न हो जायगा तब तो कोई भी वस्तु भोजन प्राप्त करे उसके विचार नहीं करेंगी, बल्कि हरएक वस्तु के साथ

तात्पर्य—यहां पर एक शंका यह होती है कि २६ श्लोक में नैनू घी दूध इन पदार्थों का निषेध किया है कि योगारंभ में न खावे और यहां पर घी दूध रोज २ पहिले सेवन करके तत्र प्राणायाम करे । यह कैसे संकृत हो सक्ता है ?

यहां पर विवेचना करना चाहिये कि वहां २६ श्लोक में योगारंभ के समय घी दूध को निषेध किया है, कुछ साधन हो जाने पर निषेध नहीं किया । परंतु यहां जो घी दूध की विधि है वह इस तात्पर्य से है कि जब साधन करते २ कुछ प्राणायाम की शक्ति, जन्म जावे तत्र उसी के साथ २ घी दूध के सेवन का भी क्रम से अभ्यास करे परन्तु कम से कम आरंभ से एक पल यानी चन्द्रमा की जब तक दूसरी प्रकृति न आवे तत्र तक उसी प्रकार जैसे कि २६ श्लोक में लिखा है साधन करे, बाद जब १ पल भीत जावे तत्र फिर क्रम से घी दूध सेवन करे, और वहाँ तक बढ़ावे जहां तक कि अजीर्ण न हो । इस पूर्व निषेध और विधि संगत हो गये । इसी प्रकार जहां २ विधि निषेध पाये जायें वहां २ समय पात्र और स्थान भेद से संगत करलेना चाहिये, क्योंकि समय एकसा सदा नहीं रहता, तथा पात्र भी सब एकसे नहीं होते, इसी तरह स्थान भी सब एक समान नहीं रहते, विवेचना से काम करना भी योग शास्त्र का एक प्रधान अङ्ग है । यदि विवेचना से चूका तो सब योग नहीं है भावा है, इसी विवेचना को सूत्र साधना चाहिये ॥

विचार करो कि पहिले प्रत्याहार प्रकरणमें लिखमाये हैं कि भोग्य वस्तुओं से मन को निवृत्त करना चाहिये, परन्तु यह भी लिखा है कि बभ्रु २ बस्तु योगी लोग अवश्य भोजन करें, तो यहां पर यह विवेचना कानो जरूर है कि मन को निवृत्तिही प्रदान है क्योंकि जहां कहीं देव भयोग से आवश्यकीय वस्तु न मिलें वहां सब किया कराया नष्ट भया कि नहीं ? इन्हों स्थलों में प्रत्याहार काम में जाते हैं कि आवश्यकीय

काठिन्यं दुरितं पूतिमुष्णं पथ्युपितं तथा ।

अतिशीतंचातिचोग्रं भक्ष्यं योगी विवर्जयेत् ॥२९॥

जो द्रव्य कठिनता युक्त हो, जिसके भोजन से पाप उत्पन्न हो, सब पच के दुर्गन्ध युक्त हुये हों, अधिक गरम हो, वा अधिक ठंडा हो, बामी हो, अति तप (अधिक तेजी लिये हो) ऐसे पदार्थों को योगी लोग कभी भोजन न करें ॥

प्रातःस्नानोपवासादि कायक्लेश विधिं विना ।

एकाहारं निराहारं, यामान्ते च नकारयेत् ॥३०॥

जब योगारम्भ करे तब प्रातःस्नान नहीं करना चाहिये । उपवासादि शरीर के क्लेश देने वाले कर्म नहीं करने चाहिये । एक ही बार भोजन करना यह भी नहीं करना चाहिये, या कुछ नहीं खाना यह भी नहीं करना चाहिये, और एक प्रहर तक निराहार रहना अधिक नहीं, तात्पर्य यह कि पूर्वोक्त उक्त पदार्थों में से कुछ छोड़कर अवश्य एक २ प्रहर बाद खा लिया करे ॥

एवंविधि विधानेन प्राणायामं समाचरेत् ।

• भारंभं प्रथमेकुर्यात् क्षीराज्यं नित्यं भोजनम् ॥३१॥

मध्याह्नैचैव सायान्हे भोजनद्वयं समाचरेत् ॥

इसी प्रकार की विधि से प्राणायाम साधन करना चाहिये । प्राणायाम करने के पहिले रोज २ दूध और घी चखना चाहिये । और मध्याह्न (दुपहरी) में तथा सायंकाल में इन्हीं दो समयों में योगी लोग भोजन करें ॥

तात्पर्य—यहां पर एक शंका यह होती है कि २६ श्लोक में नैनु घी दूध इन पदार्थों का निषेध किया है कि योगारंभ में न खावे और यहां पर घी दूध राज २ पहिले सेवन करके तत्र प्राणायाम करे । यह कैसे संकृत हो सक्ता है ?

यहां पर विवेचना करना चाहिये कि वहां २६ श्लोक में योगारंभ के समय घी दूध को निषेध किया है, कुछ साधन हो जाने पर निषेध नहीं किया । परंतु यहां जो घी दूध की विधि है वह इस तात्पर्य से है कि जय साधन करते २ कुछ प्राणायाम की शक्ति, जम जावे तत्र उसी के साथ २ घी दूध के सेवन का भी क्रम से अभ्यास करे परन्तु क्रम से क्रम शारंभ से एक पक्ष यानी चन्द्रमा की जयतुक दूधरी प्रकृति न आवे तत्र तत्र उसी प्रकार जैसे कि २६ श्लोक में लिखा है साधन करे, बाद जब १ पक्ष भीत जावे तत्र फिर क्रम से घी दूध सेवन करे, और वहीं तक बढ़ावे जहां तक कि अजीर्ण न हो । वस पूर्व निषेध और विधि संगत हो गये । इसी प्रकार जहां २ विधि निषेध पाये जावें वहां २ समय पात्र और स्थान भेद से संगत करलेना चाहिये, क्योंकि समय एकसा सदा नहीं रहता, तथा पात्र भी सब एकसे नहीं होते, इसी तरह स्थान भी सब एक समान नहीं रहते, विवेचना से काम करना भी योग शास्त्र का एक प्रधान अङ्ग है । यदि विवेचना से चूका तो सब योग नहीं हो जाता है, इससे विवेचना को सूष साधना चाहिये ॥

विचार करो कि पहिले प्रत्याहार प्रकरणमें लिखमाये हैं कि भोग्य वस्तुओं से मन को निवृत्त करना चाहिये; परन्तु यह भी लिखा है कि अमुक २ वस्तु योगी लोग अवश्य भोजन करे, तो यहां पर यह विवेचना करनी जरूर है कि मन की निवृत्तिही प्रधान है क्योंकि जहां कहीं दैव संयोग से आवश्यकतीय वस्तु न मिले वहां सब किया कराया नष्ट भया कि नहीं ? इन्हीं स्थलों में प्रत्याहार काम में आते हैं कि आवश्यकतीय

वस्तु न मिलने पर भी जो कार्य विधेय हैं वे कर लिये जायें, उनके स्थान में योगी लोग अपनी शक्ति से दूसरे उपस्थित पदार्थों को युक्त कर लें और वही गुण उत्पन्न कर लें। कैसे? भावना से, भावना टूट होने से जैसे भृङ्गी दूसरे कीड़े को अपना स्वरूप बनाय लेती है वैसेही योगी लोग भी एक वस्तु के स्थान में दूसरी वस्तु का गुण उत्पन्न कर लेते हैं। यदि यह न हुआ तो योग की क्रिया ध्यान धारणा सब झूठी है। सो नहीं यह बहुत काल से भारतवर्ष में निश्चय है कि ध्यान से ध्येय वस्तु सिंच जाती है, जैसे कि फोटी में दूरस्थ वस्तु के अवयव सिंच जाते हैं, आजकल के योगीप दासी विज्ञानी लोग भी इस योग विद्या की तारीफ इसी शक्ति के प्रभाव से करते हैं, इससे सब से उत्तम शक्ति का बढ़ाना ही विधि निषेध का कार्य है।

अथ नाडीशुद्धि ।

कुशासनेमृगाजिने ठ्याघ्राजिनेचकम्बले ।

स्पृलासनेसमासीनः प्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ॥

नाडीशुद्धिसमासाद्य प्राणायामं तमभ्यसेत् ॥३२॥

जय प्राणायाम साधन करने लगे तब पढ़िले नाडी शुद्धि करले तो ठीक होगा नहीं कभी ठीक नहीं होगा, सो उसका विधान यह है कि प्रथम कुशा के आसन में, या मृगशाला पर, या वाचस्पय पर अथवा कम्यल पर बैठे, यह कोई आसन हो मोटा हो यानी गुलगुल हो पूर्व मुख होके बैठे या उत्तर मुख होके ।

नाडीशुद्धिकथं कुर्यात् नाडीशुद्धिस्तु कीदृशी । ?

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तद्वदस्य दयानिधे ! ॥३३॥

अपरूपपालि कहते भये कि हे दयानिधि । नाडी शुद्धि किस प्रकार

करनी चाहिये और नाडी शुद्धि किस तरह की है वह सब हमसे कहे
हमारी इच्छा इसके सुनने की बहुत ही हुई है ॥

मालाकुला सुनाड़ीपु मारुतो नैवगच्छति ।

प्राणायामः कथंसिध्येत्तत्त्वज्ञानं कथंभवेत् ॥

तस्मादादीनाड़ीशुद्धिं प्राणायाम ततोभ्यसेत् ॥३१॥

घेरण्ड महाराज ने कहा कि माला की भांति गुणों हुई नाडियों के
भीतर वायु अच्छीतरह पैठ के गमनागमन नहीं कर सकता, इससे प्रा-
णायाम कैसे सिद्ध हो सकता है ? और तत्त्वज्ञान भी कैसे प्राप्त होसकता
है ? इसी कारण पहिले नाडी शुद्धि करके तब प्राणायाम का अभ्यास
करना चाहिये ॥

नाडी शुद्धिर्द्विधा प्रोक्ता समनुनिर्मनुस्तथा ।

धौतेनसमनु कुर्यान्निर्मनुं धौत कर्मणा ॥३५॥

नाडी शुद्धि दो प्रकार से होती है, १ समनु, २ निर्मनु, इनमें बीज
मन्त्र के द्वारा जो नाडी शुद्ध की जावे उसको समनु तथा धौति कर्म के
द्वारा जो नाडी शुद्ध की जावे उसको निर्मनु नाडी शुद्धि कहते हैं ॥

धौतकर्म पुराप्रोक्तं षट् कर्म साधने यथा ।

शृणुष्वसमनुचण्ड ! नाडीशुद्धिर्यथाभवेत् ॥३६॥

हे चण्डकपालि ! षट्कर्म साधन के समय में पहिले ही धौतिकर्म
कह जाये हैं, अब जिस प्रकार "समनु" नाडी शुद्धि है उसको कहते हैं
तुन सुने ॥

उपविश्यासने योगो पद्मासनं समाचरेत् ।
 गुर्थादि न्यासनं कुर्याद्यथैव गुरुभाषितम् ॥
 नाडीशुद्धिं प्रकर्वीत प्राणायामविशुद्धये ॥३७॥

प्रथम योगी पद्मासन बाध कर नामन पर बैठे, फिर गुरु आदि
 न्यास करे उसी के अनन्तर जैसे गुरु ने सिखाया है उसी के अनुसार
 प्राणायाम साधन के लिये नाडी शुद्धि करे ॥

वायुवाजं ततो ध्यात्वा, धूम्रवर्णं सतेजसम् ।
 चन्द्रेण पूरयेद्वायुं वीजं षोडशकैः सुधीः ॥३८॥
 चतुःषष्टया मात्रयां च, कुम्भके नैवधारयेत् ।
 द्वात्रिंशन्मात्रया वायुं सूर्यनाड्याच रेचयेत् ॥३९॥

आसन, गुरु-न्यास के उपरान्त वायु बीज (य, यह वायु बीज है) का
 ध्यान धूम्र वर्ण और तेजके सहित करे, फिर बुद्धिमान साधक उसी वायु
 बीज को षोडश (१६) मात्रा अर्थात् सोलह बार जप करते हुये नाक के
 बाएँ छेद से वायु को पूरण करे फिर चौथठ मात्रा की सख्यासे कुम्भक
 प्राणायाम (दाने नाक के छेद और मुह बन्द किये) धारण करे, इसी
 प्रकार बत्तीस मात्रा वायु बीज का जप करते हुये नाक के दहिने छेदको
 छेद कर रेचक (वायु को निकालना) प्राणायाम करे ॥

नाभिमूलाद्वन्निमुत्थाप्य ध्यायेत्तेजोवनीयुतम् ।
 वन्निहवीजं षोडशेन सूर्यनाड्याच पूरयेत् ॥४०॥
 चतुःषष्टयाच मात्रया कुम्भकेनैव धारयेत् ।
 द्वात्रिंशन्मात्रयावायुं शशिनाड्याच रेचयेत् ॥४१॥

नाभि मूल अग्नि तत्व का स्थान है। योग के प्रभाव ने उसी नाभि के मूल से अग्नि तत्व को प्रगट कर उठावे और पृथिवी तत्व को उसी अग्नि तत्व में संयुक्त करते हुये ध्यान करे। अनन्तर सोलह मात्रा अग्नि बीज (र यह अग्नि बीज है) का जप करते २ नाक के दहिने छेद से वायु पूरण करे। इसी प्रकार चौपठमात्रा (र) जपते हुये कुम्भक प्राणायाम करे (सब द्वार सूदे वायु धारण किये रहे) फिर बत्तीस मात्रा (र) जपते २ नाक के बाएँ छेद से वायु को त्याग करे ॥

नासाग्रेशशधृग्विंशं ध्यात्वाज्योत्स्नासमन्वितम् ।
ठं, बीजपोडशेनैव ईडयापूरयेन्महत् ॥४२॥
चतुपष्ट्यामात्रघाच 'व' बीजनैवधारयेत् ।
अमृतंप्लावितंध्यात्वा नाडीधौतंविभावयेत् ॥
लकारेणद्वात्रिंशेन दृढभाव्यंविरेचयेत् ॥४३॥

उसके बाद नासिका के अग्र भाग में, क्रिया के सहित चन्द्र सिम्ब का ध्यान करते हुये (ठं) यह बीज सोलह मात्रा जप करते २ नाक के बाएँ छेद से वायु पूरण करे, फिर जल बीज (व) इसके चौपठ मात्रा जपते हुये सुपुत्रा नाडी में (भीबर हृदय की नाडी) कुम्भक योग से वायु धारण करे, बाद ऐसा ध्यान करे मानो नाक के अग्रभाग स्थित चन्द्रबिम्ब से अमृत की धारा यह रही है उसी के द्वारा शरीर की जितनी नाडी है सब छोई जा रही है, इसीप्रकार ध्यान करते २ पृथिवी बीज (ल) इस को बत्तीस बार जप करते हुये नाक के दहिने छेद से वायु को रक्षण (त्याग) करे ॥

एवधिघानाडीशुद्धिं कृत्वानाडींविशोधयेत् ।
दृढीभूत्वासनंकृत्वा प्राणायामसमाचरेत् ॥४४॥

इसी प्रकार नंदी शुद्धि कर्म के द्वारा नाड़ियों को शुद्ध काके दृढ़ भाव हो आसन में बैठ कर प्राणायाम का अभ्यास करे ॥

सहितःसूर्यभेदश्च उज्जायीशीतलीतथा ।

भस्त्रिकाभ्रामरोमूर्छा केवलीचाष्टकुंभिकाः ॥४५॥

कुम्भक प्राणायाम आठ प्रकार का है, जैसे-१ सहि, २ सूर्यभेद, ३ उज्जायी, ४ शीतली, ५ भस्त्रिका, ६ भ्रामरी, ७ मूर्छा, एवं ८ केवली ॥

सहितोद्विविधाप्रोक्तः प्राणायामंसमाचरेत् ।

सगर्भोवीर्य्यमुच्चार्य्य निर्गर्भोवीजवर्जितः ॥४६॥

सहित नामक कुम्भक प्राणायाम दो प्रकार है, १ सगर्भ, तथा २ निर्गर्भ, जिस कुम्भक में बीजमन्त्र उच्चारण करके साधना की जावे उसको सगर्भ कहते हैं और जिसमें बीजमन्त्र वर्जित रहे उसको निर्गर्भ करते हैं।

प्राणायामंसगर्भंच प्रथमंकथयामिते ।

सुखासनेचोपविश्य प्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ॥

ध्यायेद्विधिरंजोगुण्यं रक्तवर्णमवर्णकम् ॥४७॥

घेरंड जी ने षण्डकापालि से कहा कि सगर्भ प्राणायाम किस प्रकार साधना करना चाहिये उसको पहिले तुमसे कहते हैं । यह यह है कि— सुखासन (भाराम के आसन) पर पूर्व मुख या उत्तर मुख हो के बैठे और प्रज्ञा को ऐसा ध्यान करे मानों, यह रक्त वर्ण है और अकार स्वर वर्ण के रूप है । तथा रंजो गुण विशिष्ट है ॥

इंडयापूरयेद्वायुं मात्रयापोदशैःसुधाः ।

पूरकान्तेकुम्भकाद्ये कर्त्तव्यस्तृह्वीघानकः ॥४८॥

ध्यान के अनन्तर बुद्धिमान साधक, (अ) यह बीज मंत्र सोलह बार जपना हुआ नाक के बाएँ उद् से वायु पूरण करे । उसी समय कुम्भकके आगे और पूरक के अन्त में प्रथम उद्घोषानवन्ध जो पीछे कह आये है आचरण करना चाहिये ॥

सत्वमयं हरिंध्यात्वा उकारं कृष्णवर्णकम् ।

चतुःपट्याच मात्रया कुम्भके नैव धारयेत् ॥४९॥

उसके अनन्तर सत्व गुण संयुक्त उकार स्वरूपी, कृष्णवर्ण विष्णुका ध्यान करता हुआ (उं) इस बीज को चौसठ मात्रा जप द्वारा कुम्भक प्राणायाम में वायु धारण करे ॥

तमोमयं शिवंध्यात्वा मकारं शुक्लवर्णकम् ।

द्वात्रिंशन्मात्रया चैव रेचयेद्विधिना पुनः ॥५०॥

फिर उसके अनन्तर तमोगुण युक्त मकार व्यञ्जनरूपी शिव का ध्यान करता हुआ (म) बीज से बत्तीस मात्रा जप के द्वारा उस पूरित वायु को नाक के दहिने उद् से रेचन करे ॥

पुनःपिंगलयापूर्य कुम्भकेनैव धारयेत् ।

ईड्या रेचयेत्पश्चात्तद्वीजेन क्रमेणतु ॥ ५१ ॥

उसके अनन्तर फिर भी उक्त प्रकारसे उल्लिखित समस्त बीजोंको यथा संयुक्त (जैसी संख्या कह आये हैं) जप के द्वारा दहिनी नासिका के उद् से वायु पूरण कर कुम्भक योग से उसी प्रकार धारण करके बाद फिर भी वायु नासा उद् से रेचन करे ॥

अनुलोम विलोमेन वारंवारं च साधयेत् ।

पूरकान्ते कुम्भकान्तं धृतनासा पुटद्वयम् ॥

कनिष्ठानामिकांगुष्ठैः तर्जनीमध्यमांगिना ॥५२॥

इसी प्रकार पुनः २ अनुलोम विलोम (वांएं से खींचे दहिनेसे छोड़े और दहिने से खींचे वांएं से छोड़े) के द्वारा प्राणायाम साधन करे । वायु पूरण के शेष से लेकर कुम्भक के शेष पर्यन्त तर्जनी और मध्यमा के छोड़ कर कनिष्ठा, अनामिका और अक्षुष्ठ ये तीन अङ्गुलियोंके द्वारा नासापुट धरना चाहिये । अर्थात् जिस समन पूरण प्राणायाम से वायु खींचे उस समय दहिने नासा के उद को अँगूठे से दाये रहे और बाएँ उद से खींचे । जब कुम्भक प्राणायाम से वायु को रोके तब नास के बाएँ उद को कनिष्ठा और तर्जनी धन दो अङ्गुलियों से दायी और इपर अँगूठे को भी दाये रहे और मुह भी बन्द रखे । और जब दहिने उद से वायु खींचे तो पहिले बाएँ उद की कनिष्ठा और अनामिका से दाये रहे और कुम्भक में अँगूठा भी दहिने उद में दबाये ॥

प्राणायामं निर्गर्भं त्रिना बीजेन जायते ।

एकादि शतपर्यन्तं पूर कुम्भक रेचनम् ॥५३॥

निर्गर्भं प्राणायाम जो दूसरी विधि कह जाये हैं वह त्रिना बीज मन्त्र ही किया जाता है, पूरण, कुम्भक, रेचक से तीन प्राणायाम अंग सहित साधन करने में एक से लेकर सौ पर्यन्त मात्रा हैं ॥

उत्तमा विंशतिर्मात्रा षोडशीमात्रामध्यमा ।

अधमाद्वादशीमात्रा प्राणायानास्त्रिविधाः ॥५४॥

मात्राके अनुसार प्राणायाम तीन प्रकारकी है, जिसमें बीस मात्रा की स्थिति है वह उत्तम, जिसमें सोलह मात्रा वह मध्यम, जिसमें बारह मात्रा स्थिति है वह अधम है ॥

अधमाज्जायते धर्म मेरुकं पञ्च मध्यमात् ।

उत्तमाञ्च भूमित्यागस्त्रिविधं सिद्धिलक्षणम् ॥५५॥

अधम मात्रावाली प्राणायाम साधन करने से देह में पकीना जाता है, मध्यम मात्रा की प्राणायाम से मेढ (पीठ से कमर तक) कांपने लगता है, अर्थात् एक नाड़ी गुदा से लेकर सक्ताक पर्यन्त दृग्वाकार है वही वायु भरने पर कांपने लगती है, उत्तम मात्रा की प्राणायाम से देह भूमि से उठ के मूल्य में चली जाती है, तीन प्रकार प्राणायाम की सिद्धि के येही तीन चिन्ह हैं कि पकीना आवे, देह कांपे, और देह आकाश में उठ जावे, इन चिन्हों के बिना प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त नहीं हुई पही जानना चाहिये ॥

विवेचना—प्राणायाम में जो बीस, सोलह, बारह, ये तीन संख्या बांधी गई हैं उनका तात्पर्य यह है कि जिनमे रा बीस में सोलह पूरक षोडश कुम्भक, बत्तीस रेचक हैं, इसी प्रकार बीस मात्रा वाली में बीस पूरक, अस्ती रेचक, चालीस के हिसाब से वसना जानना चाहिये, इसी प्रकार सोलह पूरक षोडश कुम्भ, बत्तीस रेचक के हिसाब से मध्यमा, तथा बारह पूरक अष्टतालीस कुम्भक और बीस रेचक से अधमा जाननी चाहिये ॥

प्राणायामात्स्वेचरत्वं प्राणायामाद्दीगनाशनम् ।
 प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनाः ॥
 आनन्दोजायतेचित्ते प्राणायामीसुखीभवेत् ॥५६॥ ,

प्राणायाम साधन करने से स्वेचरत्वं शक्ति (आकाश में उठने की ताकत) होती है, प्राणायाम से रोग नष्ट होते हैं, प्राणायाम से परम शक्ति जाग उठती है, तथा प्राणायाम से दिव्य ज्ञान लाभ होता है अर्थात् एक नयीन बुद्धि उत्पन्न होती है, फिर प्राणायाम से चित्त में आपही भाव आनन्द प्राप्त होता है, और प्राणायाम साधन करनेवाला पुरुष मय प्रकार खुशी हो जाता है ॥

तात्पर्य—नाड़ियों में जो वायु भरा रहता है वह जिना परिपालन क्रिया के गुम्न साधे एक रस बना रहता है जब कोई और दूसरे प्रकार का वायु हमारे भीतर जा बैठता और उस वायु में मिल गया तो क्रम पट नाना प्रकार उत्पन्न करके रोग राशि प्रगट करता है, विशेष कर वायु के विकार अधिक उत्पन्न होते हैं । परन्तु प्राणायाम से नया वायु नाड़ियों में बैठता है, पुराना गुम्न सधा हुआ वायु निकलता रहता है इस्से विकारी भी वायु अर्थात् विकारी यस्तु से उपजा भी वायु शरीर में आकर नाड़ियों में बैठ रहा में निग कर भी अपना असर नहीं पहुंचा सकता क्योंकि नाड़िया व्यायाम (कसरत) से भँजी रहती है, पुष्ट हो जाती हैं, उनके भीतर विकार निर्विकार बराबर गुण करता है । इसी निमित्त योगी लोग दीर्घायु और सुखी रहते हैं ॥

अथ सूर्यभेद कुम्भक ।

कथितं सहितं कुम्भं सूर्यभेदनकंष्टयु ।

पूरयेत्सूर्यनाड्या च यथाशक्तिब्रह्मिर्मन्त्र ॥५७॥

धारयेद्बहुयत्नेन कुम्भकेन जलंधरैः ।

यावत्स्वेदीनसकेशाभ्यां तावत्कुर्वतुकुम्भं क्रमम् ॥५८॥

। पद्यत महाराज ने चण्डिकापाणि से कहा कि, सहित नामक भेद में जो पहिला कुम्भक कहा था उसका विवरण तो कह पाये जब सूर्य भेद नामक जो दूसरा कुम्भक है संज्ञा विवरण तुने । पहिले जलधरबंध नामक मुद्रा धारण करते नाक के दहिने छेद में जितनी शक्ति है वायु शक्ति धर पाए करे । फिर यही पद्य के सहित उपदेश कुम्भक योग में लेके रहे, जब तक नख और यालों से पसीना न भाये तब तक स्थिर रहते ॥

2/221

प्राणोपानः समानश्चोदानव्यायौ तथैवच ।

नागः कूर्मश्चकृकरो देवदत्तो घनञ्जयः ॥५९॥

प्राण उपान, समान, व्यान, उदान, ये पांच प्रकार के वायु, शरीर के भीतर रहते हैं । तथा नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, घनञ्जय, ये पांच प्रकार के वायु शरीर के बाहर भाग में रहते हैं ॥

हृदिप्राणो बहेन्नित्यं अपानो गुदमण्डले ।

समानो नाभिदेशेतु उदानः कण्ठ मध्यमः ॥६०॥

व्यानोव्याप्य शरीरेतु, प्रधानाः पञ्च वायवः ।

प्राणाद्याःपञ्चविख्याता नांगाद्याःपञ्चवायवः॥६१॥

प्राण नामक वायु हृदय में, अपान कुदा देह में, समान नाभी में उदान कंठ में, इसी प्रकार व्यान नामक वायु समस्त शरीर में व्याप्त हो कर घुमता रहता है । ये प्रधान प्राण प्रकार के वायु हैं । तथा नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, घनञ्जय, ये पांच बाहर वाले वायु अप्रधान हैं ॥

तेषामपिच पञ्चानां स्थानान्यपि वदाम्यहं ।

उद्गारेनाग आरुयातः कूर्मरतूनमीलनेस्मृतः ॥६२॥

कृकरः क्षुत्कृते ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।

नजहाति मृतेक्षापि सर्वव्यापी घनञ्जयः ॥६३॥

ये पांच प्रकार के वायु त्रिषु त्रिषु स्थान में प्रवाहित होते हैं यह हम कहते हैं मुने, नाग नामक जो वायु है यह उकार लेने में आता है, कूर्म नामक वायु आत मुदने सोमने में अर्थात् पलक भागनेमें कृकर नामक वायु उांक में या द्विषकी में देवदत्त नामक वायु प्रमुदान में

यहता है, और घर्नद्रुप नामक वायु मरण होनेपर भी मृतक देह (साश) में भी जो बना रहता है, जिसके द्वारा लाश का फूलना पचकनर आदि बहुत से वायु के कार्य देख पड़ते हैं ॥

नागोगृहाति चैतन्यं, कूर्मश्चैव निमेषणम् ।

सुन्दर कृकरश्चैव जृम्भणां चतुर्थेनतु ॥

मवेदुनञ्जयाच्छब्दं क्षणमात्रं न निःसन्ते ॥६४॥

पांच प्रकारके जो वायु हैं उनसे पांच प्रकारके शारीरक कार्य होने हैं जैसे:—नाग नामक वायु जो हिकार में रहता है वह चैतन्यता प्रपञ्च करता है अर्थात् भोजन, किया हुआ भक्ष आमाशय में पहुंच कर जब तक ठीक अपने परिपक्व के स्थान पर नहीं पहुंचता तब तक एक प्रकार का मग्न उत्पन्न किये रहता है जिस्से कुछ मानसिक स्वाभाविक चित्त विकृति रहती है, परन्तु जब हकार जाती है तब वह आमाशयस्थ जग्न अपने परिपक्व स्थानपर पहुंच कर आराम देता है और फिर मानसिक कार्य उत्तमता से हो सकते हैं, इसी निमित्त हकार के वायु का गुण चैतन्यता सम्पादन कहा जाता है ॥

कूर्म नामक वायु जो पलक भांजने में रहता है यह पलक भांजनेमें जो आंखों को आराम मिलता है वह ऐसे कार्य के सम्पादन करता है, नेत्रों में एक प्रकार का रस रहता है जिस्से नेत्र मदा तर रहते हैं और हम तरावट के गुण से किसी प्रकार का मल उस नेत्रकी पुतली पर नहीं पेट सकता, यदि नेत्र में तरावट न रहे तो रुखाईके कारण उसपर आइर की सड़ी घूल आदि से पुतली मलीन हो जाये और कुछ भी न देख पड़े, परन्तु कूर्म नामक वायु के प्रभाव से पलक टपा करती हैं तो नेत्र मही से रस जाया करता है इससे तरावट नहीं भा रहती और मल आदि भी पुतली के ऊपर टपक नहीं पाता । योग शास्त्र में हमारी भी

पुष्टता सुद्रादि के द्वारा हो सकती है कि, परन्तु न, मांजनेसे नेत्रमें अधिक दिव्यता प्राप्त हो जैसे शंभवी सुद्रा आदि में कह जाये है, परन्तु बिना सुद्रा जो कुछ नेत्र भी रक्षा है यह इसी कर्म वायु का गुण है ॥

कृत्तर नामक वायु लुधा और तृष्णा प्रदण करता है, अर्थात् उर्ध्व जाने से एक प्रकार का वायु बाहर से आकर बड़े वेग से निकलता है उससे आभास्यका स्थित पक्षा हुआ अन्न प्रल बहुतही शीघ्र नीचे भ्रंतदियों में पँस जाता है और आभास्य का भाग खाली हो जाता है और उसके आभास्य पूर्ण होने के लिये नाटिकां उद्यत होती हैं वही लुधा तृष्णा कही जाती है, अन्न की कमी से लुधा और अन्न की कमीसे तृष्णा होती है, ये कार्य इसी कृत्तर नामक वायु के द्वारा सम्पादित होते हैं ॥

देवदा नामक वायु से अनुसंधाने कार्यं हुआ करते हैं अर्थात् जब शरीर में वायु की गति शिथिल हो जाती है तब एक प्रकार का आलस आजाता है उस आलस से सामयिक वृत्ति भी शिथिल हो जाती है, तब उस शिथिल वायु की गति को सज्ज करने के लिये बाहर से इस देव दा नामक वायु को शुरु शीघ्र के आकर्षण किया जाता है और फिर वेग के छोटा जाता है उसके प्रयत्न तक आगते रहे सोयी नहीं तब तक मारान गिलता रहता है, परन्तु दीर्घान्वास से इसकी भी आवश्यकता नहीं रहती यह भी आत्म यश हो सकती है ॥

पनलुव वायु जो सदा शरीर में रहता है किसी समय अलग नहीं हो सकता उससे शब्द का कार्य हुआ करता है, अर्थात् बड़े शब्द से शब्द उत्पन्न करती, शब्द उत्पन्न होने के कारण दो द्रव्यका वेगसे घर्षण और विभाग है, यह घर्षण और विभाग जैसे अकारादि स्वर और अकारादि व्यंजन में तथा करताही जादि में प्रगट है, पहिले हृदय से वायु को उठा कर देग से फँट जाती है जब फट्टा लगता है तब अकार स्वर, इकार स्वर और उकार, एर लण' से बिच्चार मूच और अनि

संकोच भाव से प्रगट होते हैं, इससे स्वरों को विवृत प्रयत्न के बर्ण कहे हैं, इसी प्रकार पहिले कठ नली के तर उपर भाग का संयोग करके पीछे वेग से वियोग करने पर कर्षण वाले बर्ण प्रगट होते हैं, इसी से उमको स्पर्श कहते हैं, दोनो हरणों को वेग से एक २ के साथ रुयोग करने से ताली बजती है, इत्यादि कार्य्य जितने होते हैं ये सप्त धनशुभ नामक वायु के हैं, मुख्य बात यह है कि वायु एक ही है परन्तु कार्य्य भेदसे अपने २ स्थान पर पृथक् २ नाम धारण क्रिये हैं ॥

सर्वेते सूर्य्यभिन्ना नाभिमूलात्समुद्दरेत् ।

ईडया रेचयेत्पश्चाद्घैर्घ्यंणाखण्डवेगतः ॥६५॥

पुनःसूर्य्येणचाकृष्य कुम्भयित्वा यथा विधि ।

रेचयित्वा साधयेत्तु क्रमेण च पुनः पुनः ॥६६॥

पहिले ५५-५६ श्लोक में कह आये हैं कि सूर्य्यकी नाडी (नाक के दहिने छेद) से बाहर की वायु को यथा शक्ति खींच के जालंधर बंध के सहित कुम्भक में धारण करे सो इस कुम्भक के समय कचित १० प्रकार के प्राणदि समस्त वायु के भेदों को, सूर्य्य नाडी (नाक के दहिने छेद) से अलग २ करके खींचे हुए को, धारण करे जैसा कि पहिले कह आये हैं कि जय तक गरु भीर बालों में पसीना न आये चाभे रहे भीर उपर नाभी मूल से समान नामक वायु को उठाये, उसके अनन्तर धीरता के साथ छेद वेग से (पीच में रुके नहीं) नाक के बाएँ छेद से रेचन करे । इसी प्रकार फिर भी उभी सूर्य्य नाडी (दहिने छेद) से आकर्षण करके कुम्भक करे और जैसे कह आये है वीमाही रेचन करे । इसी प्रकार बार बार प्रथम में साधे । इसी को सूर्य्य भेद कुम्भक कहते हैं ॥

सूर्यभेद कुम्भक का फल ।

कुम्भकःसूर्यभेदस्तु जरामृत्युविनाशकः ।

बोधयेत्कुण्डलीशक्तिं देहानलविघ्नर्दनः ॥

इतितेकथितंचण्ड सूर्यभेदनमुत्तमम् ॥६७॥

यह सूर्यभेद नामक कुम्भक जरा (बुढ़ाई) मरण इन सब को नष्ट करता है । इसके साधन से कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है और देहकी अग्नि बढ जाती है अर्थात् क्षुधा लगती और भोजन किया पदार्थ पच जाता है ॥

तात्पर्य—शरीर सञ्चारी जितने प्रकार के वायु विनाश आये हैं और जितने कार्य दिवाय आये हैं वे यदि अपने २ कार्य के ठीक परिमाण से किया करें तो शरीर निरोग रहता है और यदि अधिक प्रमाण से या अल्प प्रमाण से करें तो रोग वृद्धि के कारण हैं तथा मानसिक शक्ति को पटाय के उन्हीं व्यापारों की ओर कुभाव्ये रहते हैं । जैसे हृदय का बहुत शल्द २ धक्धकाना, प्राणको अधिकता है, ऐसही वायुका अधिक छूटना अपान के कार्य की अधिकता है, पेट का अधिक फूलना समान वायु के कार्य की अधिकता है, स्वास का अधिक चलना (दना) आदि उदान के कार्य की अधिकता है, इसीप्रकार शरीरकी पीड़ा व्यात के कार्य की अधिकता है, शल्द २ पलकों का फिरना कूर्म के कार्य की अधिकता है, क्षुधा तृप्या का अधिक होना या शिबकी का सङ्गना रुधिर के कार्य की अधिकता है, अनुदाई का अधिक होना देवदंत के कार्य की अधिकता है, तथा शल्द में कर्कशता होना आदि पतञ्जल के कार्य की अधिकता है वा इन सबों की न्यूनता, यानी हृदय कम धक्धकाय, प्रवाण वायु छूटने नहीं, पेट में मुर्दा उठी, नाभ उठने में कष्ट हो दुःख हो, अङ्गोंमें मुली आ जाये इत्यादि भी रोगों के उत्पत्ति के कारण हैं, तदा सञ्चार कम जाये वा

न आवे, पलक न किरें या कम किरें लुधा तृप्या न लगे या कम लगे, जमुहाइ न आवे, वा कम आवे शब्द उच्चारण न क्रिया जाय वा स्वर मद हो जाय इत्यादि भी रोगो के प्रकार हैं, इनसे शरीर दुखी रहता है, मन विकल रहता, तथा मानसिक शक्ति की उत्तेजना जाती रहती है, बुद्धि विषम हो जाती है, स्मृति नष्ट हो जाती है इत्यादि नाना प्रकार की अशान्ति आजाती है । योगाभ्यास से जैसे कि सूर्यभेद कुम्भक कह आये इससे उन सब प्राणादि वायु के कार्य अपने आधीन (काबू) में रहते हैं चहै घटावे चहै बढ़ावे, चहै बन्द करदे, चहै ठीक २ होने दे इत्यादि । मुख्य बात यह है कि जब इन वायु के कार्यों से कोई कष्ट प्राप्त हो तब उक्त कुम्भक से शान्त कर सका है, जैसे कि खांसी या छिचकी होने लगी तो यह कुम्भक करने से कष्टमठ बन्द हो जाती है, इसकी परीक्षा भी की गई है, इसी निमित्त यह योगशस्त्र सब प्रकार के रोगों की एक मात्र दिव्य औषध है जो अपने शरीरही में सदा यत्नमान है जहाँ दूँदने की जरूरत नहीं रहेगी । इससे योग विद्या में मनुष्यों को अब चित्त लगाना चाहिये ॥

उज्जाययी कुम्भक ।

नासाभ्यांवायुमाकृष्य वायुं वक्त्रेण धारयेत् ।

हृद्गलाभ्यांसमाकृष्य मुखमध्ये च धारयेत् ॥६८॥

बाहरी वायु को नाक के दोनो छेदों से खींच कर मुख में धारण करे । तथा शरीर के भीतर की वायु को भी हृदय और गले के योग और दबाव से खींच कर मुख में उभरी वायु के साथ मिलाप दे जो कि पहिले बाहर से खींच कर भरी गई थी ॥

मुखं प्रक्षाल्य सवेदा कुर्याज्जालं श्वरंततः ।

आशक्ति कुम्भकं कृत्वा धारयेद्द्विरोधतः ॥६९॥

जब बाहरी भीतरी दोनों वायु मुख में एकत्र करै तब ऊपर से मुह धीरे डाले और सम्यक् बन्दनादि करके जालन्धर यन्त्र नामक मुद्रा स्थापन करै । और जहां तक शक्ति रहै कुम्भक प्राणायाम के योग से वायु को मुख में धारण किये रहै परन्तु कोई विघ्न न पढ़ने पाये वाद मुखही से रेचन करे । इसी को उज्जायी कुम्भक कहते हैं ॥

उज्जायी कुम्भक का फल ।

उज्जायीकुम्भकं कृत्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ।

न भवेत्क्षय रोगं च क्रूरवायुरजीर्णकम् ॥७०॥

आमवातं क्षयंकासं त्वरं प्लीहा न विद्वते ।

जरामृत्यु विनाशाय चोज्जायी साधयेत्तरः ॥७१॥

उज्जायी नामक कुम्भक को करके सब कार्य साधन करता पादिये । इस कुम्भक के करने से कफ के रोग नहीं होते । क्रूर वायु (रुख वायु का विकार) अजीर्ण, आमवात, क्षय, दाँधी, ज्वर, प्लीहा, ये सब रोग भी नहीं उताते । जो मनुष्य जरा मृत्यु को विनष्ट किया चाहे वह इस उज्जायी को अवश्य साधन करे ॥

शीतली कुम्भक ।

जिह्वा वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः ।

क्षयंचकुम्भकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत्पुनः ॥७२॥

जिह्वा द्वारा वायु को आकर्षण करे अर्थात् जीभ को ओठों के बाहर निकाल के ओठों को दाँये और किञ्चित् सान रखे जिसे वायु भीतर की ओर खींचे जाये । अन्ततः तब वायु को धीरे २ उदर के

भीतर पूरण करे और जब शक्ति भर वायु खींच ले तब कुछ थोड़े ही काल तक कुम्भक करे और फिर नाक के दोनों छेदों में रेषन कर दे । यहां पर यह विवेचना भी रखें कि पहिले ही से नाशिका के दोनों छेदों को मूद ले तब जिह्वा से वायु खींचे ? या नाक के छेद खुले रहें तब खींचे ? तो ऐसी दशा पर यह निश्चय रखना चाहिये कि यह शीतली कुम्भक दोनों प्रकार से हो सकता है और दोनों प्रकार की साधना से गुण दायक हो सकता है परंतु बिना नाशिका दवाये पर उत्तम है ।

शीतली कुम्भक का फल ।

सर्वदा साधयेद्गोपी शीतली कुम्भकं शुभम् ।

अजीर्णं कफ पित्तं च नवतस्य प्रजायते ॥७३॥

योगी सर्वदा सर्वदा तब काल में जहां कहीं रहे इस शुभकारी शीतली कुम्भक को साधन करे । इसे अजीर्ण, कफ रोग, पित्त विकार, ये कभी नहीं उस साधक को सताय सके ।

भस्त्रिका कुम्भक ।

भस्त्रेव लौहकाराणां यथा क्रमेण संभ्रमेत् ।

तथात्रायुंच नासाभ्यामुभाभ्यांचालयेच्छनैः ॥७४॥

जिस प्रकार लोहार की धीकनी बार २ उठ २ के वायु खींचती है उसी प्रकार नाक के दोनों छेदों से धीरे २ वायु को बार २ खींचे और गदर में पूर्ण करे ।

एवंविंशति वारञ्च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम् ।

तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वाक्तञ्च यथाविधि ॥७५॥

त्रिचारं साधयेदनं भस्त्रिका कुंभकंसुधीः ।
नचरोगं नचकेशमारोग्यंच दिनेदिने ७६ ॥

इसी प्रकार जैसा कि पहिले कह आयेहैं बीस धार वायु खींचकर फिर कुंभक करे जब कुंभक शक्ति भर पूरा हो जाय तब उसी प्रकार जैसा कि पहिले घोरकनी की तरह सोचने का कह आये हैं, उसी नाकके छेदों में बीस धार के फ्लोकासे रीचन करे । इसी प्रकार इस भस्त्रिका कुंभक को घुट्टिनाम नर तीन धार साधन करे तो उसके न रोग हों . न कोई क्रोध हो और दिन २ आरोग्यता प्राप्त होगी ॥

भ्रमरी कुम्भक ।

अर्द्धरात्रिगते योगी जन्तूनां शब्दयजिते ।
कर्णापिधायहस्ताभ्यां कुर्यात्पूरककुंभकम् ॥७७॥

जब आधी रात धीत जावे तब योगी एकान्त स्थान में जाय, जहाँ कि किसी जीव जन्तु का शब्द न सुन पड़ता हो, वहाँ बैठ कर दोनों हाथों से कान मूँद ले और पूरक तथा कुंभक प्राणायाम करे ॥

शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं शुभम् ।
प्रथमंभिल्लि नादञ्च, वंशीनादं ततःपरम् ॥७८॥
मेघभस्तरं भ्रमरी, घंटा कांस्यं ततः परम् ।
तुरी भेरी मृदङ्गादि निनादानक दुन्दुभिः ॥७९॥

जब पूर्वोक्त विधि से योगी कुंभक करेगा तब उसके ध्यान दे कर दहिने कान से सुनना चाहिये, उन समय शरीरान्तर्गत जो शुभ नाद हो यह सुनाई पड़ेगा, पहिले फ्लोका का शब्द सुन पड़ेगा फिर घीघी दे

में वंशी का सा शब्द सुन पड़ेगा, उसके उपरान्त मेघों की सी गर्जन सुनाई देगा, उसके उपरान्त श्लाघा का शब्द सुन पड़ेगा, फिर भ्रमरी का सा गुनगुनाता सुन पड़ेगा, उसके बाद घटा का सा नाद सा सुन पड़ेगा, उसके बाद मञ्जीराका शब्द सुन पड़ेगा, फिर तुरुही का सा नाद, फिर मेरी (नरसिंहा) फिर घुदङ्ग, फिर नगाड़े का सा शब्द सुन पड़ेगा ॥

एवंनानाविधंनादं जायने नित्यमभ्यसात् ।

अनाहतस्यशब्दस्य तस्यशब्दस्य याध्वनिः ॥८०॥

ध्वनेरन्तर्गतंज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतंमनः ।

तन्मनोविलयंयात्रि तद्विष्णोः परमंपदम् ॥

एवंभ्रामरी संसिद्धः समाधिसिद्धिमाप्नुयात् ॥८१॥

उक्त नाना प्रकार के नाद तभी उत्पन्न होंगे जब कोई मनुष्य प्रति दिन अभ्यास करे, अन्यथा चाहे कि एकही दिनमें सुन पड़े सो नहीं ॥

उस अनाहत (जिसको किसी ने नहीं किया जापही होता है) उसकी अद्भुत ध्वनि उस ध्वनि के अन्तर्गत एक प्रकार की ज्योति उत्पन्न होती है, उस ज्योति के अन्तर्गत मन है, उसमें लय हो जाता है, यही विष्णु का परम पद है, इसी प्रकार भ्रामरी कुम्भक सिद्ध हो जाने पर समाधि सिद्ध हो जाती है ।

तात्पर्य—जब साधक भ्रामरी कुम्भक के योग से भाँस मूढ़ कर हृदय के मध्य में जो द्वादशदल कमल है उसको देखेगा और उस अनाहत नाद की अद्भुत ध्वनि सुनेगा तब मन अवश्य एकाग्र होगा । उस समय भाँस के मूढ़ने पर भी भीतर एक प्रकार की दृष्टि उत्पन्न होती है जो दृष्टि से एक प्रकार की ज्योति मानुन पड़ती है । यही ज्योति विष्णु का परम पद है । अर्थात् उसी अवस्था से और उदार की मुल्यायस्था से

बुद्ध भी फर्क नहीं है । योगी लोग उस अवस्था को इती गरीर में प्राप्त कर परमानन्द लाभ किया करते हैं । ध्वनि एक ऐसा पदार्थ है कि मन तब स्वभावही में जा संलग्न होता है । जैसा कुछ ध्वनि में मन पृथक् होता है वैसे किसी विषय में नहीं । इसी निमित्त कहा है कि:-

“जपादष्टगुणं ध्यानं ध्यानादष्टगुणंतपः ।
तपसाऽष्टगुणं गानंगानात्परतरं नहि” ॥

यानी जप करने से आठगुना मन ध्यान में लगता है और ध्यान से आठगुना तप में क्योंकि तप मन इन्द्रिय दोनों को एकाग्र कर देता है ध्यान शब्द कमता नहीं । तप से आठगुना गान में क्योंकि श्रवण शक्ति सब तरफ से मन को खींच लेती है । गान से परे कोई भी वस्तु नहीं है जो मन को एकाग्र कर सके इत्यादि । मुख्य बात यह है कि योग विद्या का सार समाधि यह समाधि इस आसती नामक कंपनी से बहुत शब्द सिद्ध हो सकती है ॥

मूर्च्छा कुम्भक ।

सुखेनकुम्भकं कृत्वा मनश्चभुवोरतरम् ।

संत्यज्यत्रिपद्यान् सर्वान् मनोमूर्च्छासुखप्रदम् ॥

आत्मनिमनसोयोगा दानंदी जायते श्रुत्वा ॥८२॥

प्रथम श्लोक के उचित पूर्व कथित विधान से कुम्भक प्राणायाम करे और मन को दृष्टि के द्वारा भीनों के बीच में लगाम दे । और क्लिप्त विषय, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि हैं, सब से मन को निवृत्त कर ले । भीनों के मध्य में आमा पुर नामक द्विदश स्वेत कनक से तयी में

मन को संयुक्त करे । और मन मुख पद मूर्च्छित की भांति हो जावे । और मन के योग से परमात्मा में लय हो जाय इसके निश्चय मानन्द प्राप्त होता है ॥

केवली कुम्भक ।

हंकारेण्यहिर्याति सः कारेण्यिशेत्पुनः ।

पट्शतानिदिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ॥

अजपानामगायत्रीं जीवो जपतिसर्वदा ॥८३॥

स्वास वायु जब भीतर से बाहर निकलता है तब (हं) यह अक्षर उच्चारित होता है । और जब स्वामं भीतर की ओर खींचत है तब (सः) यह अक्षर उच्चारित होता है । ये दोनों अक्षरों का समूह एकदूस त्रजार छः मी २१६०० दिन रात में उच्चारित होता है अर्थात् दिन रात में इतने स्वाम चलते हैं । इन दोनों अक्षरों का विचार तंत्रकारों ने यह किया है कि (हं) शिव । (सः) शक्ति है । तथा (हंसः) और (मोहं) दोनों पद एकही वस्तु हैं । इसके इच्छका अजपा गायत्री कहते हैं (आप ही आप निकलने से अजपा है) से। जीव इसकी सदाही जपता रहता है ॥

मूलाधारियथा हंसस्तथाहिहृदिपंकजे ।

• तथानासापुटद्वंद्वे त्रिविधंसङ्गमागमम् ॥८४॥

मूलाधार अर्थात् लिङ्ग और गुदा के मध्य भाग में हृदय पदा अर्थात् समाहत नामक कण्ठ में, तथा नाक के दोनों छेद अर्थात् द्वेहा और पिङ्गला नाड़ी में इन तीनों स्थानों से (हंसः) रूप अजपा का जप हुआ करता है । अर्थात् इन तीनों स्थानों से स्वाम वायु का गहरा गहरा जप करता है ॥

षण्णवत्यंगुलीमानं शरीरं कर्मरूपकम् ।
 देहाद्वहिर्गतावायुः स्वभावोद्वादशांगुलिः ॥८५॥
 गायनेषोद्दशांगुल्यो भोजनविशतिस्तथा ।
 चतुर्विंशांगुलीः प्रस्यः निद्रायां त्रिशदंगुलिः ॥
 मैथुनेषट्त्रिंशदुच्च व्यायामे च ततोऽधिकम् ॥८६॥

और २ शास्त्रों के हिसाब से मनुष्य का देह ८४ अंगुल का प्रमाण, अर्थात् माटे तीन हाथ लम्बा है, परन्तु योग शास्त्र के हिमावने मनुष्य शरीर ८६ छानवे अङ्गुल का है । इस भेद का कारण यह है कि और शास्त्र कार खड़े मनुष्य की बराबर एक दण्ड खड़ा कर नापते हैं तो ठीक ८४ अङ्गुल उसी की शरीर के अङ्गुल से होगा, परन्तु योग शास्त्रवाले पैर के अंगूठे की धल मनुष्य को खड़ा कर के डेरे से नापते हैं और यह डेरा नाक के ऊपर होकर ब्रह्मरंघ्र में लगते हैं जिसे १२ अंगुल और भी बढ़ जाता है । इस्ते ८६ छानवे अंगुल का मनुष्य शरीर है । इसी लिये वि-शेषण दिया है कि (कर्म रूपक) अर्थात् अंगूठे से तो ब्रह्मरंघ्र तक कर्म रूपक शरीर है और केवल नाप वाला तो ८४ अंगुल है ॥

अब शरीर के वायु को भी योग शास्त्र उतना ही लम्बा मानते हैं जितना लम्बा कि शरीर है । यानी ८६ अंगुल परिमाण शरीर के अभ्यन्तर वाला कर्म स्वरूप वायु है । सभी वायु जब देह के बाहर स्वभा-विक श्वास प्रश्वास द्वारा होता है तब उसकी दीर्घ शरीर से बाहर बाहर १२ अंगुल की होती है । यानी मूँध या नाक या अपान से जब नापही भाव वायु निकलता है तब केवल १२ अंगुल तक जाता है । जब गान किया जाता है तब कुछ योग अधिक होता है इस्ते यह वायु १६ मोलह अंगुल तक जाता है । भोजन में जब-जब भीतर पैठता है तब भीतर से वायु दबाव के कारण वीस अंगुल तक शरीर के बाहर जाता

है । इसी प्रकार पंथ (रास्ता) चलने में चौथीय २४ अंगुल बाहर जाता है क्योंकि परिश्रम से वायु का वेग बढ़ता है तो बाहर की गति भी बढ़ जाती है निद्रा में तीस अंगुल तक बाहर जाता है क्योंकि उस समय मानसिक व्यापार जो वायु के व्यापार को कुल यत्ने रहते हैं वे शिथिल रहते हैं और वायु का आना जाना बेरोक रहता है । मेषुन में छत्तीस अंगुल शरीर से बाहर वायु जाता है, क्योंकि उसमें शरीर की समस्त नाड़ियों का वायु कपित हो कर क्लोक से निकलता है । मुख्य करके बीयं पतन में इसका स्वरूप प्रत्यक्ष होता है । और व्यापाम, यानी कसरत, या दौड़ना, वां कोहं काम वेग से या मेहनत से करने पर उसे भी अधिक वायु शरीर से बाहर निकल के जाता है और यही उसका स्वरूप कहा जाता है ॥

स्वभावेऽस्यगतेर्न्यूने परमायुःप्रवर्द्धते ।

आयुःक्षयोऽधिकेप्रोक्ती मारुतेचान्तराद्गते ॥८७॥

स्वाभाविक स्वास वायु का परिमाण केवल १२ बाहर अंगुल बाहर गति में कह आये हैं, सो यदि उसे कम गति किसी प्रकार शरीर से बाहर गमन में होय तो परमायु (उमर) बढ़ जाती है और यदि स्वाभाविक वायु की गति उसे (१२ अंगुल से) अधिक हो जाय तो आयु घट जाती है ।

• दियेयता.—स्वाभाविक वायु का पटना चिन्ता, व्याधि, शोक, मादि के जमाय मे जानन्द युक्त शरीर में होता है और उसका बढ़ना अर्द्ध चिन्ता, व्याधि शोक आदि से होता है, इसी वायु को ठीक रखने या कम परिमाण से बाहर निकलने के लिये योगशास्त्र की आवश्यकता है । उपर गान, भोजन, पन्य, निद्रा, मेषुन, आयाम इनमें जो वायु बढ़ के जाता है । उसमें भी आयु के पक्ष में हानि पहुचती है, पान्तु यदि गान को छोड़ के ये सब कम परिमाण से आचरण किये जायें और

कुम्भक अधिक बढ़ाय दिया जाये तो आयुके पक्षमें हानि न पहुंचेगी, या भोजन का छोड़ बिलकुल न किये जायें तो और भी उत्तम है । फिर पूरा कुम्भक यदि करसके अर्थात् शत, सहस्र, वा असंख्य वर्ष तक स्वास, रोक सके तो भोजन की भी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी । रहा गान उसमें यद्यपि वायु शरीर से अधिक प्रभाय निकलती है तो भी उसका एक दूसरा गुण यह है कि नित्य के अभ्यास से कठ नली आदि की नाड़िया कभी पड़जाती हैं इससे बाहर की जो बिकारी वायु प्रतिक्षण पैठ कर व्यापि उत्पन्न करती है वह नहीं ठहरने पाती, यही प्रायः उन २ के निकला करती है, और यदि विशुद्ध ध्यान ज्ञान वा उपदेश विषयक गान होता है तो चित्त को परमानन्द प्रदान करता है ॥

आयाम के विषय में भी यही बात है कि अभ्यास से नरुदी, देशी, इन्ही सब पुष्ट होती है और बिकारी वायु का असर नहीं होता, परन्तु उच आयाम के प्रयोग भी इसी योग के रीति से होना चाहिये, नहीं तो पहिले तो नाड़ी आदि पुष्ट होती हैं किन्तु जहां चोड़ा भी बिकार भीतर पहुंच के रक्त में मिला लहां तुरन्त आयु लय करता है । इससे पूर्वोक्त आसनों की रीति से ही आयाम ठीक है अन्यथा शरीर का प्राणवायु गष्ट हो जाता है ॥

तस्मात्प्राणस्थितेद्देहे मर्यानैवजायते ।

वायुनाघटसम्यन्धे भवेत्केवलकुम्भकम् ॥८८॥

तिसै यह सिद्धांत है कि जय तक प्राणवायु देह में स्थित रहता है उच तक मरण नहीं होता । इसीकृति शरीर रक्षा के सम्यन्ध में उच प्राणवायु के द्वारा केवल कुम्भकही मुख्य है ॥

जावज्जीवोजपेन्ममन्त्र मजपासत्यकेवलं ।

अद्वायधिधृतं सरुया विभ्रमकैवलीकृते ॥८९॥

अतएवहिकर्तव्यः केवलीकुम्भकोनरैः ।

केवलीचाजपासख्या द्विगुणाचमनोन्मनी ॥१७॥

मनुष्य अथ तक जीता रहे तब तक जैसी संख्या विहित है उसी प्रकार अजपा मन्त्र जपे देह के भीतर प्राणवायु के समागम सेही केवली कुम्भक साधित होता है, इससे मनुष्यों को केवली कुम्भक अवश्य करना चाहिये । केवली कुम्भक में अजपा की मन्त्रा यदि दूनी करके जपे तो यह अजपा मन को दिन २ उन्नत अर्थात् ऊंचे भाव को पहुंचाती है ॥

नासाभ्यांवायुंमाहृष्य केवलकुम्भकंचरत् ।

एकादिकचतुःपष्टं धारयेत्प्रथमेदिने ॥१८॥

नाक के दोनों छेदों से वायु को भौंच के केवल कुम्भक का साधन करे और उक्त कुम्भक के समय पहिले दिन पूर्वोक्त अजपा मन्त्रकी संख्या एक से लेकर अब तक चौंसठ बार पूरी न हो तबतक धारण किये रहे ॥

केवलीमष्टधाऋत्यां चामेयामेदिनेदिने ।

श्रायवापञ्चधाऋत्यां चथातत्सकथयामिते ॥१९॥

उक्त प्रकार से केवली कुम्भक को प्रतिदिन आठ पहर में आठ बार करना चाहिये, अथवा प्रतिदिन पांच बार साधन करे । यह घेरण्ड जी शिष्य ने कहते हैं, जैसा कि तुम से इन कहते हैं ॥

प्रातमध्याह्नहसायान्हे मध्येरात्रिचतुर्थके ।

त्रिसंध्यमथथाऋत्यां त्वसमानेदिनेदिने ॥२०॥

प्रातःकाल, मध्यह्न, सायंकाल, मध्यरात्रि, तथा रात्रि के शेष भाग में । अथवा यह भी न हो सके तो तीनों मध्याह्न में बराबर भाग से करे, पाल्म प्रतिदिन इन्में कभी न पूरे ॥

पञ्चवारंदिनेवृद्धिवारिकंचदिनेतथा ।

अजपापरिमाणंच यावत्सिद्धिःप्रजायते ॥१४॥

अब तक यह केवली कुम्भक सिद्ध न हो लेय तब तक प्रति दिन अजपा का परिमाण एक बार अथवा पांच बार क्रम से बढ़ाते जाय चाहिये ॥

प्राणायामंकेवलींच तदावदतियोगवित् ।

कुम्भकेकेवलीसिद्धौ किंनसिद्धप्रतिभूतले ॥१५॥

अब साधक केवली कुम्भक साधन कर लेता है तब वह योगवित् नपांत योग विद्या का ज्ञानने वाला कष्टा जाता है । केवली कुम्भक सिद्ध होने से भूतल में ऐसी कोई वस्तु नहीं बाकी रहती जो सिद्ध न हो जाय अर्थात् केवली कुम्भक को अग्रिम साधन करना उचित है ॥

इति या घोरण्डसंहितायां घोरण्ड षण्डकापानि सन्वादे

षट्स्थ योगप्रकरणे प्राणायाम प्रयोगो नाम

पञ्चमापदेशः ॥ ५ ॥

षष्ठोपदेशः ।

अथ ध्यान योगः ।

स्थूलंज्योतिस्तथासूक्ष्मं ध्यानस्यत्रिविधंविदुः ।

स्थूलंमूर्तिमयंप्रीक्तं ज्योतिस्तेजोमयंतथा ॥

सूक्ष्मंविन्दुमयंत्रह्य कुण्डलीपरदेवता ॥१॥

चेरस्य महाराज प्राणायाम की विधि कहकर ध्यानयोगका प्रकरण कहते हैं उसमें ध्यान तीन प्रकार वर्णन करते हैं, १ स्थूलध्यान, २ उयोनिध्यान, तथा ३ सूक्ष्म ध्यान. तिनमें स्थूल ध्यान मूर्तिमय होता है अर्थात् जिस देवता की मूर्ति में साधक का रुचि हो वा गुरु की मूर्ति का चिन्तन । जिसकेद्वारा तेजोमय ब्रह्म अथवा प्रकृतिका ध्यान किया जाय उसको तेजोमय ध्यान कहते हैं । इसी प्रकार जिस ध्यान के द्वारा विंदमय ब्रह्म तथा कुण्डलिनी शक्ति का दर्शन प्राप्त होता है उसके सूक्ष्म ध्यान कहते हैं ॥

स्थूल ध्यान की विधि ।

स्वकीयहृदयेध्यायेत्. सुधासागरमुत्तमम् ।

तन्मध्येरत्नद्वीपन्तु सुरत्नवालुकामयम् ॥२॥

साधक आसन बाध के दोना नेत्र मूढ़कर अपने हृदय के मध्य में ऐसी चिन्ता करे माने परमोत्तम अमृत भरा सागर वर्तमान है । और उसी समुद्र के मध्य में एक रत्नमय द्वीप बिराजमान है । उसी रत्नमय द्वीप में रत्न रूपी बालू की राशि चारो ओर फैली है और अपूर्व शोभा बढाय रही है ॥

चतुर्दिलुनीपतरुर्वहुपुष्पसमन्वितः ।

• नोपोपवनसंकूले वेष्टितंपरिखाड्व ॥३॥

उस रत्न द्वीप के चारो ओर नौय के युग्म बहुत पुरवों के सहित बिराजमान हो रहे हैं । उस नौय के उपवन की शोभा माने कितने की या है ऐसी मानुष हो रही ॥

मालनीमल्लिकाजाती केशरैश्वंपकैस्तया ।

पारिजातैःस्थलैःपद्मीगन्धामादितदिङ्मुखैः ॥४॥

उस नीचे वृत्त के चारों ओर मानती, चेंबेली, जूही, केसर, चम्पक, परिजात, स्वयं पद्म खीर रहे हैं तथा उनकी सुगन्धि से दशोदिया बसक रही हैं ॥

तन्मध्येसंस्मरेद्योगी कल्पवृक्षंमनोहरम् ।

चतुःशाखाचतुर्वेद नित्यपुष्पफलान्वितम् ॥५॥

इसके अनन्तर योगी उसी रत्न द्वीप के मध्य में एक मनोहर कल्प वृक्ष में चार शाखा (हाल) चारों वेदों को ध्यान बलसे स्थापन करे, उन चारों वेदमईं डालों में नित्य पुष्प (नित्य नैमित्तिक काम्य कर्म) और शुभ कर्म के फल की प्रगटा रूपी फल युक्त ध्यान करे ॥

भ्रमराःकोकिलास्तत्र गुंजन्तिनिगदन्तिच ।

ध्यायेत्तत्रस्थिरीभूत्वा महामाणिक्यमण्डपम् ॥६॥

उसी वेद मईं शाखा के पुष्पों में ब्रमर कोकिल (मरुभं परायण वाधुनज्जन) गुंज रहे हैं (पढ़ पढ़ाव रहे हैं) और निगदन्ति (परस्पर उप-देण) कर रहे हैं । फिर उसी वृत्त के नीचे स्थिर भावसे ध्यान करे मानो एक बड़ा भारी सेाने का मण्डप बना है और शोभा बढ़ाव रहा है ॥

तन्मध्येतुस्मरेद्योगी पर्यकंसुमनोहरम् ।

तत्रेष्टदेवतांध्यायेद्यद्ग्यानंगुणभाषितम् ॥७॥

फिर उस मण्डप के मध्य में योगी रुढ़ स्वरण करे मानों एक मनो-हर दिव्य रत्न मय पल्लव बिजा है फिर उस पल्लव के रूपर दृष्ट देवता का ध्यान करे प्रथा कि गुरु ने कहा है ॥

यस्यदेवस्यगृहं यथाभूषणव्याहनम् ।

तद्रूपध्यायतेनित्यं स्पृष्टध्यानमिदंविदुः ॥८॥

जिस देवता का जैसा रूप हो वैसेही भूषण और वाहन यह सब तद्रूप नित्यही ध्यान करे । इसी को स्थूल ध्यान कहते हैं ॥

तात्पर्यः—पहिले जो चारो वेद शाखा बर्णन किया है इससे यह साफ जाहिर होता है कि योगियों को वैदिक मार्ग का प्रचार अधिक करना उचित है क्योंकि ध्यान कोटि में उसी का रूपक आया है ॥

प्रकारांतर स्थूल ध्यान ।

सहस्रारमहापद्मे कर्णिकायांविचिन्तयेत् ।

विलग्नसहितंपद्मं द्वादशैर्दलसंयुतम् ॥९॥

जब दूमरी भांति का स्थूल ध्यान बर्णन करते हैं । ब्रह्म रंज में सहस्रार नामक एक सहस्र दल कमल है, तहां योगी इसी रूप में ध्यान करे कि उस महा पद्म की पसुरियों के बीच जो कलिका है उसमें भी एक द्वादश दल कमल है ॥

शुक्लवर्णमहातेजो द्वादशैर्धीजभापितम् ।

ह स क्ष म ल व र यूं, ह स ख फूँ यथाक्रमम् ॥१०॥

यह द्वादश दल कमल स्वेत वर्ण है और तेज में प्रभक्त रहा है, और सभी कमल के द्वादश दलों में क्रम से आगे लिखे अक्षर बीच करके बैठारे हैं । यथाः—ह, स, क्ष, म, ल, व, र, यूं, ह, स, ख, फूँ । येही धीजाक्षर हैं ॥

तन्मध्येकर्णिकायांतुं अ क थ।दिरेखात्रयम् ।

ह ल क्ष कौणस्युक्तं, प्रणवंतत्रवर्त्तते ॥११॥

उसी द्वादश दल कमल के मध्य में अ क थ।दिरेखा है उसके बीच ग,

क व, ये तीन वर्ण, तीन रेखा और ह, ल ङ, ये तीन वर्ण तीन क्षीणों में मिले-बुधे हैं, तथा मध्य भाग में प्रणव अर्थात् ओंकार विद्यमान है ॥

नादविन्दुमयपीठं ध्यायेत्तत्रमनोहरम् ।

तत्रोपरिर्हंसयुग्मं पादुकातत्रवर्तते ॥१२॥

योगी इसप्रकार ध्यान करें सानों बड़ा नादविन्दु मय एक मनोहर पीठा विद्धा है, उसके ऊपर एक हंस का जोड़ा बिराजमान है और यही एक जोड़ी पादुका (खड़ाहूँ) भी धरे है ॥

ध्यायेत्तत्रगुरुन्देवं द्विभुजंचत्रिलोचनम् ।

श्वेताम्बरधरन्देवं शुक्लगन्धानुलेपनम् ॥१३॥

तहाही दो भुजा युक्त और तीन नेत्र युक्त गुरुदेव का ध्यान करें और उन गुरुदेव का वस्त्र श्वेत, दिव्य रत्न, और सागों शुक्लवर्ण गन्ध परीर में लेपन किये है ॥

सात्पथ्यं—यहा पर गुरु को द्विभुज कह के त्रिनेत्र, चतुर्भुज कहते हैं कि गुरु त्रिभुज ज्ञानी देना चाहिये, उनके सत्तान्य नेत्रों की अपेक्षा विज्ञान नेत्र भी एक विशेष नेत्र रहता है जिनमें सद्मत् प्रत्यक्ष होता है आश्रकल जो लोग मोटी बुद्धिवालों को गुरु करते हैं यह टीका नहीं है ॥

शुक्लपुष्पमयमाल्यं रक्तशक्तिसमन्वितम् ।

एवंत्रिधगुरुध्यानात् स्थूलद्व्यानंप्रसाध्यति ॥१४॥

और यह भी ध्यान करें वनों गुरु की श्वेत पुष्पोंकी माला चत्रिने रक्त वस्त्र की शक्ति के मन्दिन बिराजमान है । इसप्रकार गुरु के ध्यान करने से स्थूल ध्यान साधित होता है ॥

सात्पर्य—रक्त शक्ति समन्वित इसलिये कहा है कि गुग्गु में किसी प्रकार की छिन्नाई न हो, रक्त वर्ण का गुग्गु तेजस्वी बोधक है ॥

अथ ज्योतिर्ध्यानं ।

कथितंस्थूलध्यानन्तु तेजोध्यानंशृणुष्वमे ।

यद्ध्यानेनयोगसिद्धिं रात्मप्रत्यक्षमेवच ॥१५॥

चिरण्ड महाराज ने कहा, हे अष्टकापालि ! हमने तुम से स्थूल ध्यान कहा अर्थात् तेजो ध्यान कहते हैं उसे सुनो, जिस ध्यानसे योग सिद्ध होता है और आत्मा भी प्रत्यक्ष देग जाता है । अर्थात् कार्य कारण प्रगट हो जाता है ॥

मूलाधारेकुण्डलिनी भुजङ्गाकाररूपिणी ।

जीवात्मातिष्ठतितत्र प्रदीपकलिकाकृतिः ॥१६॥

ध्यायेत्तेजोमयंब्रह्म तेजोध्यानंपरात्परं ॥

मूलाधार अर्थात् गुग्गु देग और लिङ्ग मूल के मध्य स्थान में, कुण्डलिनी शक्ति भुजङ्ग (सर्प) के आकार में घिराजमान है, उसी स्थान में दीप शिखा की तरह जीवात्मा भी घिराजमान है उसी स्थान में ज्योति कृपी ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये । इसीको तेजो ध्यान वा ज्योतिर्ध्यान कहते हैं, यह ध्यान योगी को परात्पर है ॥

प्रकारांतरं ज्योतिर्ध्यानं ।

भुवैर्मध्येमन्नाहुर्ध्वं च यत्तेजःप्रणवात्मकम् ।

ध्यायेद्ब्रालात्रलीयुक्तं तेजोध्यानंतदेवहि ॥१७॥

यह प्रकार ज्योतिर्ध्यान ऊपर जह आये हैं अब दूसरे प्रकार का ज्योतिर्ध्यान यह है कि दोनों भीड़ों के बीचों बीच मन के ऊपर (मानसिक क्रिया के भी ऊपर दर्जे पर) जो डोकार मध, शिखा माला समन्वित ज्योति वर्तमान रहती है उसी ज्योति को ब्रह्मज्ञान से ध्यान करे । इस को भी तेजोध्यान या ज्योतिर्ध्यान कहते हैं ॥

सात्पर्य—जब योगी भीड़ों के बीच मन लगा कर ध्यान करते हैं और प्रणय का उच्चारण करते जाते हैं तब वह मन एकाग्र होके प्रणय को ही देखता है, फिर कुछ काल में प्रणय मन में रहता है सही पर तेजोमय होजाता है, तब उस पूरे मन्य की दृष्टि और प्रणय की चिन्ता से मन की ऊंची गति के अन्तर में जो तेज प्रतिभात होता है वही ज्योति ध्यान है, इसके ध्यान से मनुष्य के शरीर में कोरु भी विकार नहीं रह जाते निर्मल मन भी प्राप्त होता है ॥

अथ सूक्ष्म ध्यानम् ।

तेजोध्यानं श्रुतं च खड सूक्ष्म ध्यानं च दाम्यहम् ।

बहुभाग्य च शब्दादस्य कुण्डली जागृता भवेत् ॥१८॥

घोरख महाराज कहते हैं हे चण्डिकायानि । तुमने तेजोध्यान सुना अब इन तुमने सूक्ष्म ध्यान कहते हैं वह भी सुने । जिस मनुष्य की कुण्डलिनी जागती है वह यशस्वी भाग्यवान है ॥

आत्मनः सहयोगेन नेत्ररंध्राद्विनिर्गता ।

विहरेद् राजमार्गं च चञ्चुलत्वात्प्रदृश्यते ॥१९॥

वह कुण्डलिनी शक्ति जब कभी किसी प्रकार भाग्य बल जागती है तब भी वह नेत्रों के छेदों से निकल कर आत्मा के साथ मिल के राज

नागं में विहार करने लगती है और ऐसी चञ्चलता धारण करती है कि कभी किसी प्रकार भी नहीं देस पड़ती ॥

शाम्भवीमुद्रयायोगी ध्यानयोगेनसिध्यति ।

सूक्ष्मध्यानमिदगोप्य देवानामपिदुर्लभम् ॥२०॥

जय कुण्डलिनी पूर्णोक्त विधियो से कदाचित् ज्ञानी श्रीर चञ्चल हो रात्र नागं में बिहारे तब योगी उठे पूर्णोक्त शाम्भवी मुद्रा के योग से ध्यान करे तो तुरन्त मिट्ट हो के ध्यान में आजायेगी । यह सूक्ष्म ध्यान परम गोप्य है और देवताओं को भी दुर्लभ है ॥

सात्त्विकं—पीछे लिख नीचे है कि कुण्डलिनी शक्ति शरीर जड़ता का रूपक है और उठका जागना जड़ता विनाश है शरीर का आत्मा यग में होता है । प्राय अनेक योगी योग शरीर के यग में लाकर भी योग विद्या के महान २ कार्य नहीं करते पर नेत्र इन्द्रिय के द्वारा चित्र विचित्र पदार्थों के देखने में रानी २ फिरते और शूद्रियों का भाल घामते हैं । हमीसे कहा है कि जन्मे चञ्चलता से योगी जन उसके रूप को धिर नहीं करभते, अर्थात् शरीर के यग होने का कार्य नहीं प्रगट कर सते, उभी के अभ्यास के लिये, जिसके कि शरीर वनीभूत होने के उपरांत याछे कार्य योगी योग किया करें शाम्भवी मुद्राके योग से सिद्धि दगांपा है । अर्थात् फिर कोरे शरीरक अपघार न करे तो नीराग हो कर यह दीर्घायु आदि कार्य दिग्याय दे जो क्रियुग युगातर तक योगियों के स्थिति योग शास्त्रों में लिखे है । परन्तु यह सब यही दृढ़ युद्धि के कार्य हैं ॥

सूक्ष्मध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानं त्रयज्ञते ।

तेजोध्यानात्सप्तगुणं, सूक्ष्मध्यानं परात्पत्न ॥२१॥

भूल ध्यान से सौगुना अधिक तेजो ध्यान कहा जाता है और तेजो ध्यान से लाख गुना अधिक सूदन ध्यान है तथा बड़ ध्यान परे स भी पर है ॥

इतितेकथिनचण्ड ध्यानयोगंसुदुर्लभम् ।

आत्माशाक्षाद्भवेदास्मात्तस्माद्ध्यानविशिष्यते ॥२२॥

चण्ड महाराज ने कहा कि हे चण्डकापालि ! हमने तुमने इस सु-दुर्लभ ध्यान योगका व्योम कहा, जिसे कि आत्मा साक्षात् कार होता है । और इसी कारण ध्यान योग सब प्रकार के योगो से विशेष है ॥

इति श्री चण्ड सङ्घितायां चिरगुह, चण्डकापालि सन्वादे,
घटस्थयोगे, सप्तमसाधने, ध्यानयोगे नाम
प्रथोपदेशः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोपदेशः ।

समाधि योग ।

समाधिविज्ञपरयोगं बहुभाग्येनलभ्यते ।

गुराःकृपाप्रसादेन प्राप्यतेगुरुभक्तितः ॥१॥

चण्ड महाराज ने चण्डकापालि से कहा कि सध योगो से परे स-माधि योग है परन्तु यह बहुत ही बड़ी भाग्य से प्राप्त होता है । यह समाधि योग गुरु की भक्ति करने पर जब गुरु प्रसन्न होते है तब उपरी ही कृपा से प्राप्त हो ता है अन्यथा नहीं ॥

विद्याप्रतीतिः स्वगुरुप्रतीतिरात्मप्रतीतिर्मनसः प्रबोधः ।
दिनेदिने यस्य भवेत्स योगी सुशोभनाभ्यासमुपैतिसदाः २

जिम मनुष्य की प्रतीति विद्या (योग विद्या) में है, अपने गुरु में प्रतीति है और अपने आत्मा में प्रतीति है तथा मन का प्रबोध (दृढ़ विश्वास) है वेही योगी दिन २ प्रति सुन्दर अभ्यास की गति कर बहुत शल्द प्राप्त होते हैं ॥

घटाद्भिन्नं मनः कृत्वा ऐक्यं कृत्वा परात्मनि ।
समाधितं द्विजानीयान्मुक्तसङ्गोदशादिभिः ॥३॥

शरीर से मन को अलग करके सबमे परे जो परमात्मा है उसमें ए-
कता कर दे, इसी को समाधि जानना चाहिये, यह अवस्था सब प्रकार
की दगा आदि अवस्थाओं से मुक्त संघक है ॥

तात्पर्य—इसके पूर्व दूसरे श्लोकमें विद्या विषय प्रतीति कह जाये
है उनका मुख्य तात्पर्य यह है कि किसी विद्या की साधना यदि किया
जाये और उसमें प्रतीति न करे तो अभ्यास में चित्त कभी नहीं लगेगा ।
इस निये प्रयत्न यह आवश्यक है कि विद्या विषय प्रतीति लावे, कि
असुख विद्या के जो बहुत २ कार्य वर्णन किये गये हैं वे साधनसे अवश्य
हो सकेंगे । यदि पहिलेही यह उपेक्षा हो गई कि यह गपेक्ष जाती है
तो इनकी क्रिया ठीक हाही नहीं सकेंगी । दूसरी बात गुरु में प्रतीति
अर्थात् विद्या विधाने यात्रे में विश्वास रहना चाहिये, यदि पहिलेही से
यह दृष्टि उत्पन्न हो गई कि यह कुछ नहीं मिलाय सकैगा तो इसीलिये
पहिले ही यह जाये है कि विधाने यात्रे की परीक्षा कर ले तब
उपेक्षा गुरु करे तात्पर्य यह कि परीक्षा लेंगे के बाद उसमें अप्रतीति
नही करनी चाहिये । तीसरी बात आत्म प्रतीति है अर्थात् अपने चित्त
में यह न समझे कि असुख काम हर्षि नहीं हो सकैगा । पैगा चित्त

में जाने से कोई भी कार्य नहीं हो सके यही कारण है कि आज कल भारत बाकी गण किसी विद्या को नहीं गतन रीति से प्राप्त कर सके, सब में पूर्णा गरी है इसी कारण योग विद्या भी लुप्त हो गये है, साधक को ऐसा नहीं करना चाहिये । अंगरेज लोगो में यह दृढता है कि कोई शक्त कोई नई विद्या की प्रगटता करना आरम्भ करता है और यह शक्त ठीक सत्य नहीं हासिल कर सका तो उसके पुत्र पीत्राति कई पुरुष तक टोड़ते नहीं कोई न कोई अवश्य प्राप्त करके तब टोड़ते हैं । इसी दृढता से इस समय रेल तार, पड़ी आदि के अतुल्य व्यापार हम लोगो को दिखाय रहे हैं इससे अपने बिल को कभी नहीं बटाना चाहिये । खीची बात मन का प्रयोध है अर्थात् समस्तदारी भी अवश्य होनी चाहिये नहीं और की जगह तीर हो जायगा । ये बातें जिनमें हैं उन्हीं का अभ्यास दिन दिन घटता है और उन्हीं को सिद्धि प्राप्त होती है ॥

जाने सनाधि का जो लक्षण कहा है कि शरीर से मन को निकारके परब्रह्म में विलाय दे उसका तात्पर्य यह है कि जो प्राय सुख दुःख आदि शरीर के धर्म प्राप्त हो कर मन को भाङ्गादित और व्यथित करते हैं, उनको आत्म प्रयोध (ज्ञान की दृढता) से यह समझ ले जागे केवल शरीर ही के लिये सुख दुःख हैं मन को नहीं । जैसे कि अगुली में फोडा हुआ तो मन की दृढता से उस फोडे की पीडा को चिक अगुली ही में समाप्तना मन से उस्से लगाव न रखना, ऐसा शक्तर देखने में भी आता है कि बड़े प्रलयात मनुष्य को शरीर में कोई पीडा हुई है तो नारे चिल्लाहट के साथ दुखी और कुल कुटुम्ब टोला पेशापी सब को व्याप पडुनाता है लेकिन बहुत से दुर्बल मनुष्यो को देखा गया है कि वे उन्हे भी अधिक पीडित होने पर भी अपने दुखी कुल कुटुम्बियो को धीरज देकर उनकी पचह हट को शांत किया करते हैं । ऐसी अवस्था में विशेष मन के प्रयोध को ककरत है जिस्से मन को शरीर से पृथक्

समस्त कर परमात्मा में लगावे । अर्थात् शरीर इन्द्रिय इनके कार्य होते रहें, उनमें शुभाशुभ का ध्यान मात्र रहे, पर मानें मन उससे दूर है यह भावना रखे । यद्यपि समाधि है । यह समाधि बहुत ही कठिन साधन है । यदि योगाकूट पुरुषों के उन मन में छू नहीं जाता और साधारण मनुष्यों में ईश्वर की कृपा से स्वभाव ही सिद्ध देखा जाता है, सभी को जन्मान्तर का साधन कहते हैं । परन्तु जो कोई इसका साधन दृढ़ता से करेगा अवश्य फल प्राप्त कर सक्ता है इसे परे दूसरा भागन्द और कुछ मनुष्य के लिये कोई भी नहीं है । इसे इसके अवश्य साधन करना चाहिये ॥

अहंब्रह्मनचान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहंनशोकभाक् ।

सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥४॥

जो साधक सब साधनों का अभ्यास कर चुका हो और समाधि साधन किया चाहे वह अपने मन को इस ज्ञान की ओर सदा लुकाये कि, मैं ब्रह्म हूँ दूसरा कुछ नहीं । और निश्चय करके पक्ष हूँ किन्तु जो समस्त व्याधि जनक शोक दुःख भागी मैं नहीं हूँ, केवल शरीर है । मैं तो केवल मत् (तीनों काल में एक समान) चित्त (मत् भवत् का जानने वाला चेतन्य) आनन्द रूप (सब दुःख विगत ममन एक भीष्ठा) मय व्यक्तों से नित्य ही छूटा हुआ अपने असली भावों से मुक्त (विद्यामगनी) हूँ ऐसी ही भावना सदा चित्त में रखे ॥

अथ समाधि के कई भेद हैं उनका वर्णन करते हैं; यथा:—

शांभव्याचैवसेत्रव्यां भ्रामर्याद्योनिमुद्रया ।
ध्यानंनानंदरसानंदं लयसिद्धिश्चतुर्विधा ॥५॥

पञ्चधाभक्तियोगेन मनोमूर्च्छाचपड्विधा ।

पड्विधोयंराजयोगः प्रत्येकमवधारय ॥६॥

समाधि योग छः प्रकार से है जैसे—१ ध्यान योग समाधि । २ नाद योग समाधि, ३ रसानन्द योग समाधि, ४ लय सिद्धि योग समाधि, ५ भक्तियोग समाधि ६ राजयोग समाधि। ये छः प्रकार की समाधियों को छः प्रकार की मुद्राओं से साधन करना चाहिये । शांभवीमुद्रा से ध्यान योग समाधि, सेचरोमुद्रा से नादयोग समाधि, श्वासरो नाम कुम्भक के योग से रसानन्दयोग समाधि, योगिमुद्रा के योग से लय सिद्धि योग समाधि, भक्ति अवलम्ब पूर्वक भक्ति योग समाधि, वही प्रकार मनी मूर्च्छा नामक कुम्भक के योग से राजयोग समाधि का साधन करना चाहिये ॥

ध्यानयोग समाधि ।

शांभवीमुद्रिकांकृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत् ।

विन्दुब्रह्मसकृद्दृष्ट्वा मनस्तत्रनियोजयेत् ॥७॥

प्रथम शांभवीमुद्रा का अनुष्ठान करके तब आत्मा को प्रत्यक्ष करे अनन्तर विन्दु मय ब्रह्म का एक बार दर्शन करके यहाँ मन को नियुक्त करे ।

स्वमध्येकुरुचात्मानं आत्ममध्येचस्वंकुरु ।

आत्मानंस्वमयंदृष्ट्वा नकिञ्चिदपिवाधते ॥

सदानन्दमयोभूत्वा समाधिस्थोभवेत्तरः ॥८॥

अनन्तर गिर स्थित ब्रह्मलोकमय आकाश के मध्य में अपने जीवात्मा को स्थापन करे और इसी प्रकार अपने जीवात्मा के मध्य में गिर स्थित ब्रह्मलोक मय आकाश को भी स्थापन करे, पश्चात् अपने जीवात्मा

को आकाश में देख के वह पुनः किसी वस्तु से किञ्चित् भी बद्ध न हो
और सदानन्द भव हो। के समाधि में स्थित हो जावे इसी को ध्यान योग
समाधि कहते हैं ॥

नादयोग समाधि ।

साधनात्खेचरीमुद्रा रसनोर्द्ध्वगतासदा ।

तदासमाधिसिद्धुःस्या द्वित्वासाधारणक्रियां ॥९॥

खेचरी मुद्रा साधन के द्वारा जीभ को ऊपर की ओर जानेवाली
कर रखते, अर्थात् तलुवे के गड्ढे में जो असृत कूप विद्यमान है वहीमें
जीभ को संयुक्त करना होगा। इस क्रिया के द्वारा समाधि सिद्ध हो
जाती है और जितनी साधारण क्रियाएँ हैं सब को छोड़ दे इसका नाद
योग समाधि कहते हैं ॥

रसानन्दयोग समाधि ।

अनिलमन्दवेगेन भ्रामरीकुम्भकंचरेत् ।

मन्दमन्दरेचसेद्वायुं भृङ्गनादंततोभवेत् ॥१०॥

• भ्रामरी नामक कुम्भक का अनुष्ठान करके, धीरे धीरे हलने योग से
प्राप्त वायु को परित्याग करे, इस योग के साधन करने से देह के भीतर
भ्रमर की ध्वनि के समान नाद सुन पड़ता है ॥

अन्तःस्यंभ्रमरोनादं श्रुत्वातत्रमनो नयेत् ।

समाधिर्जायतेतत्र आनन्दःसोहमित्यतः ॥११॥

जब शरीर के भीतर भ्रमरी का नाद सुने तब वहाँ जहा सुन पड़ता

हो अपने मन को लगाय दे, तब उस समय समाधि प्राप्त होती है और उस समय के आनन्द से 'योग' (यही ब्रह्म मैं हूँ) यह ज्ञान उत्पन्न होता है, इसीको नादयोग समाधि कहते हैं ॥

लयसिद्धि समाधि ।

योगिमुद्रांसमासाद्य स्वयंशक्तिमयोभवेत् ।

सुशृङ्गाररसेनैव विहरेत्परमात्मनि ॥१२॥

ध्यानन्दमयःसभूत्वा ऐक्यं ब्रह्मणिसम्भवेत् ।

अहंब्रह्मेतिवाद्द्वैतं समाधिस्तेनजायते ॥१३॥

योगी पुरुष प्रथम योगिमुद्रा का अनुष्ठान करके अपनेको शक्तिमय मान लेवे, अर्थात् अपनेको स्त्री और परमेश्वरको पुरुषस्वरूप अनुभवकरे अनन्तर मनही मन में ऐसी भावना करे माने पुरुष स्वरूप परमात्मा के साथ स्त्री स्वरूप आप शृङ्गार रस उत्पन्नी बिहार कर रहे हैं । उसके अनन्तर यह भी अनुभव करना होगा "माने उक्त बिहार के द्वारा जो परमानन्द रस उत्पन्न हुआ है उसी रस में मैं निमग्न हो के परब्रह्म के इहित अभिन्न भाव से प्रणय में सम्मिलित हुआ हूँ । इसी योग के द्वारा "मैंही ब्रह्म ही अद्वितीय हूँ" ऐसे विज्ञान का नष्टार होता है, इसी समाधि को लय सिद्धि समाधि कहते हैं ॥

सात्पर्यः—यहां पर पुरुष अपने को स्त्री अनुभव करे यह बात विचार कोटि में भट्टी ही मालुम पड़ती है । फिर उस समय की नवीन शिक्षा की कसौटी में और भी महा निषिद्ध जंचेगी । परन्तु चैरशु म-हाराज ने मनुष्यों की विषय बांधना को अच्छी तरह जान समाजके इस भाव का आभिकार किया है । समाधि के प्रकार की, इसी निमित्त दिखाया है कि मनुष्यों की उक्ति बहुत प्रकार की होती है । १ कोटि

सदृश स्वभाव सदा बीर रस में नत रहते हैं । २ कोई शांत स्वभाव सदा भजन पूजन में रत रहते हैं । ३ कोई उदासीन स्वभाव सदा सतरह के भाषा से दूर ही बने रहते हैं उन्हें कुछ भी नहीं सुझाता । कोई ऐसे भी पुरुष होते हैं कि उनको स्त्री संसर्ग, स्त्री चिन्ता स्त्री रत्न समझना, यही भ्रष्टा लगता है । ५ कोई पुरुष ऐसे होते हैं कि उनका साथ छोड़ा भी सपकार करे तो वे उसकी बदली भाङ्गाद में तन अर्पण किये रहते हैं । ६ कोई ऐसे पुरुष होते हैं जो मदा न्यायमें रत रहते हैं न्याय ही के लिये शरीर तक परित्याग कर देते हैं । इन छः प्रकार के पुरुष जय उक्त छः प्रकार की समाधि साधन में लगेंगे तब उनके छः प्रकार के यत्नों से छः प्रकार की क्रियाओं का अभ्यास होगा और जिसमें जिस स्वभाव की अधिकतर होगी अर्थात् स्वभाव की अजीबत से कभी २ जो हानि हुआ करती है, जैसे मर्यादा से अधिक बीर रस वाले ने कदाचिन्तु कुल कुटुम्ब माता पिता के साथ बीरता चरितार्थ किया । शांत रस वाले ने भावश्यक कार्य छोड़ भजन पूजन में काल बिताय दिया । उदासीन वाले ने शारीरिक व्योहारों से हाथ धोया । स्त्री प्रेमी ने अगम्य तर्क न बचाया । कृतज्ञ पुरुष ने किसी धूर्त के बस हो अविश्वस छो दिया । न्याय परायण ने न्याय मूल को न समझ उसी में तन अर्पण किया । इत्यादि कुष्यापार नहीं प्राप्त हो सकेंगे । विशेष बात यहां पर यह स्मरण रहे कि जय स्त्री परायण पुरुष ईश्वर के सन्निध्यन स्त्री भाव का अभ्यास करेगा तो उसकी यह प्रकृति धीरे धीरे बदल कर दूसरी ओर कुब जायेगी । यह इन्हीं निमित्त यह योग इस भांति लिखा है ॥

भक्तियोगं समाधि ।

स्वकीय हृदये ध्याये दिष्टदेव स्वरूपरुम् ।

चिन्तयेद्भक्तियोगेन परमाह्लादं पूर्वकम् ॥१४॥

ध्यानन्दाश्रुपुलकेन दशाभावःप्रजायते ।

समाधिःसम्भवेत्तेन सम्भवेच्चमनोन्मनी ॥१५॥

विशुद्ध भक्ति और परम आह्लाद के सहित अपने हृदय में अपने
इष्ट देव के स्वरूप का ध्यान करे और आनन्द के भावों में, तथा रोमांच
हो और बेहोशी आनामे । इसे जो समाधि अर्थात् मन की एकाग्रता
होती है उसे मनोन्मनी अर्थात् मन का सुलाभापन हो जाता है इसी
को भक्तियोग समाधि कहते हैं ॥

राजयोग समाधि ।

मनोमूर्च्छासमासाद्य मनश्चात्मनियोजयेत् ।

'परमात्मनःसमायोगात् समाधिंसमवाप्नुयात् ॥१६॥

प्रथम मनो मूर्च्छा नामक कुम्भक का अनुष्ठान करके मन को पर-
मात्मा के सहित मिलाय दे इसी प्रकार परमात्मा के संग्राम से समाधि
प्राप्त होती है । इसी को राजयोग समाधि कहते हैं ॥

समाधि योग का महात्म ।

इतितेकथितंचयुद्ध समाधिंमुक्तिलक्षणम् ।

राजयोगःसमाधिः स्वादेकात्मन्येवसाधनं ॥

उन्मनीसहजावस्था सर्वैकैकात्मयाचकाः ॥१७॥

चिरगुड महाराज कहते हैं कि हे अण्डकावाणि ! मैंने तुम से इस
समाधि योग का कथा जो मुक्ति का लक्षण है । अथ मुख्य बात यह
कहता हूँ कि चाहे राजयोग, समाधि हों, चाहे उन्मनी हो चाहे सहजावस्था

के कोई भी योग हों सब एकही आत्मा के बाधक हैं और सब का माधन आत्मा की एकाग्रता है अर्थात् एक रस ध्यान का लगाना है ॥

जलेत्रिष्णुःस्यलेत्रिष्णुः त्रिष्णुःपर्वतमस्तके ।

ज्वालमालाकूलेत्रिष्णुः सर्वत्रिष्णुमयंजगत् ॥३८॥

ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ त्रिष्णु परमात्मा न हों । जल में त्रिष्णु हैं, बल में त्रिष्णु हैं । पर्वत के मस्तक पर त्रिष्णु हैं । अग्नि की राशि में भी त्रिष्णु हैं, यह सम्पूर्ण जगत् त्रिष्णु सब है । अर्थात् कोई पदार्थ त्रिष्णु से भिन्न नहीं है ॥

भूचराःस्त्रेचराश्चामी यावन्तोजीवजन्तवः ।

वृक्षगुल्मलतावल्ली तृणाद्वात्रारिपर्वताः ॥

सर्वत्रह्यविजानीयात् सर्वपश्यतिचात्मनि ॥११॥

भूचर अर्थात् पृथ्वीपर विचरन करनेवाले जीव स्त्रेचर अर्थात् आकाश में चलनेवाले जीव । और भी जो ये सब जीव जंतु देख सकते हैं । तथा बड़े २ वृक्ष, छोटे २ पीछे लता, बल्ली (एक हाल वाले लथे वृक्ष) तृण भादि ममस्त घास, पानी, पहाड़ इन सबों को ब्रह्म जानना चाहिये और और सबों को अपने आत्मा में देखना चाहिये ॥

आत्माघटस्थचेतन्य मद्वैतंशाश्वतंपरं ।

घटाद्विभिन्नतोज्ञात्वा वीतरागोविद्यासनः ॥२०॥

इसी गरीर स्थित जो जीवांतमा है वह चेतन्य है और अद्वितीय है (एकही बहुत व्यापी) यह निरन्तर रहता है कभी नाश को नहीं प्राप्त होता । तथा सब पदार्थों से पर है । इनको गरीर से अलग जानने ही से वीतराग (ध्यान से मुक्त) और घासना रहित भाव प्राप्त होता है ॥

एवंविधः समाधिः स्यात् सर्वसङ्कल्पवर्जितः ।
स्वदेहे पुत्र दारादि बांधवेषु धनादिषु ॥
सर्वेषु निर्ममो भूत्वा समाधिं समवाप्नुयात् ॥२१॥

जैसा कि कह भाये हैं इसी प्रकार समाधि साधन करना चाहिये, किन्तु इस समाधि के साधन में सब प्रकार के सङ्कल्पों का छोड़ देना चाहिये । किंतु विषय का सङ्कल्प छोड़ना चाहिये, इसपर कहते हैं कि अपनी देह के विषय में, पुत्र दारा आदि के विषय में, धान्य वापने और पन आदि के विषय में, तथा सब पदार्थों से अमला छोड़कर समाधिको प्राप्त करें ॥

तत्संख्यामृतं गोप्यं शिवोक्तं विधितानिच ।
वाशांसंक्षेपमादाय कथितं मुक्तिलक्षणम् ॥२२॥

यह तत्व श्यामृत है अर्थात् ईश्वर में लय है जीवन मरण ही पर हो के मोक्ष प्राप्ति का लक्षण है, इसको महादेव जी ने बहुत प्रकार से कहा है, परन्तु हमने वन सवो में से सलेप लेकर कहा, जो कहा यही प्रधान मुक्ति का लक्षण है ॥

इतिते कथितं चण्ड ! समाधि दुर्लभः पर ।
पहुंक्षात्वा न पुनर्जन्म जायते भूमिमण्डले ॥२३॥

घोरण्ड महाराज ने कहा है चण्डकापालि । हमने तुमसे दुर्लभ और सब योगों से पर समाधि को इतगर कहा वह, इतनाही बहुत है, जिस के कि जानने से भूमि नपवर्त्म में फिर जन्म नहीं होता अर्थात् जन्म मरण व्यन से मुक्ति हो जाती है ॥

उपसंहार ॥

योग विद्या और वैद्यक शास्त्र से कुछ भी फर्क नहीं है, क्योंकि पाठकों को आदि से अन्त में इस घेरगडमहिता के सहिताके माधनो का विचार भलीभाँति विदित हो गया होगा कि शारीरिक आचार (सन-दुरुस्त) ही इसमें प्रधान साधन है । इसी प्रकार वैद्यकमें भी शारीरिक आचार की व्यवस्था सर्वत्र वर्तमान है, फिर अब आप कह सकते हैं कि योग और वैद्यक से कोई भी फर्क नहीं रहा । अन्त में मुक्ति भी दोनों शास्त्रों का धन सिद्धान्त है, जैसे वैद्यक का सिद्धान्त "धर्मार्थकाममोक्षा-याः शारीर्यं मूलमुत्तमम्" अन्त में मोक्ष पद दिया है, सभी प्रकार इस योग में भी हरजगह आरोग्यता दर्शय के अन्त में समाधि साधन का फल लिखा है कि "न पुनर्जन्म न जायते" यह इसी निमित्त हमने अपने इस आरोग्यदर्पण के अंतुयं खण्ड में इस अनूपम योगविद्याके साधन दिखाय के अपने पाठकों को परिश्रम दिया है कि वे आप इन साधनोसे जापदा नठार्वे और समार का भी उपकार परस्पर कथोपकथन से करें, यह हमारा भी परिश्रम सफल है ॥ इति ॥

घेरगड सहिता योगशास्त्र की भाषा टीका
समाप्त ।



घेरण्डसंहिता का सूचीपत्र ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
भस्माधान	६	वातक्रम कपालभाति	२५
पटकर्म	८	व्यक्तक्रम कपालभाति	२५
धीति	८	शीतक्रम कपालभाति	२६
अन्तरधीति:	९	श्रासनविधि	२७
वातसर:	९	सिद्धासन	२८
वारिभार:	१०	पद्मासन	२८
अग्निभार:	११	भद्रासन	२९
वह्निरुक्तधीति	११	मुक्तासन	३०
महालनम्	१२	यज्ञासन	३१
बहिष्कृतधीति: प्रयोग	१२	स्वस्तिहासन,	३१
दन्तधीति	१३	सिंहासन	३१
दन्तमूलधीति	१३	गोमुखासन	३२
दन्तधीति का फल	१३	बीरासन	३२
त्रिह्वामोघन	१४	धनुरासन	३३
त्रिह्वामूलधीति	१४	सृतासन	३३
कर्णधीति	१६	गुप्तासन	३३
कपालरंध्रधोघन	१६	मत्स्यासन	३३
दृश्यधोघन	१७	पश्चिमोत्तानासन	३३
दृश्यधीति	१७	मत्स्येन्द्रासन	३४
बसनधीति	१८	गौरहासन	३४
प्रिविघना	१८	उरुकटासन	३४
बाधधीति	१९	सङ्कुटासन	३४
मुलधोघन	२०	मयूर'सन	३५
वस्ति प्रकरणम्	२१	कुम्भकुटासन	३५
जलवस्ति की विधि	२१	कुर्मासन	३५
वस्ति का फल	२१	उत्तानकुर्मासन	३५
स्थलवस्ति	२२	वत्तानमयडूहासन	३६
नेत्रियोग	२३	वृक्षसन	३७
श्रीलिङ्गी योग	२३	मंडूकासन	३७
श्रीलोक योग	२४	गङ्गासन	३७
कपालभाति योग	२४	वृषासन	३८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
शूलभासन	३८	भुजगिनी मुद्रा	७५
मकरासन	३८	चतुर्थोपदेश ।	
उष्ट्रासन	३९	प्रत्याहार कथन	७८
भुजगासन	३९	पञ्चमोपदेश ।	
योगासन	४०	प्राणायाम विधि	७९
मुद्राकथनम् ।		स्थान निर्णय	८०
महामुद्रा	४३	काल निर्णय	८३
नभोमुद्रा	४४	मिताहार	८५
उड्डीयानवन्ध	४४	नाडी शुद्धि	८२
शालधरवन्ध	४६	सूर्यभेद कुम्भक	९०
मलयवन्ध	४७	उज्जायी कुम्भक	९०६
महायन्ध	४८	शीतली कुम्भक	९०७
महावेध	४९	भस्त्रिका कुम्भक	९०८
शेषरीमुद्रा	५०	भ्रामरी कुम्भक	९०९
भिपरीति करी मुद्रा	५१	मृच्छी कुम्भक	९११
योगिमुद्रा	५३	कवली कुम्भक	९१२
योगिमुद्रा का फल	५७	षष्ठीपदेश ।	
वज्रीणीमुद्रा	५८	अथ ध्यान योग	९१७
वज्रीणीमुद्रा का विशेष फल	५९	स्थूल ध्यान की विधि	९१८
शक्तिचालिनी मुद्रा	६०	प्रकारांतर स्थूल ध्यान	९१०
सशानी मुद्रा	६४	ज्योतिर्ध्यान	९२२
नांदुकी मुद्रा	६४	प्रकारांतर ज्योतिर्ध्यान	९२२
शामवी मुद्रा	६५	सूक्ष्म ध्यान	९२३
पद्मधारण मुद्रा	६६	सप्तमोपदेश ।	
पार्श्वीधारण मुद्रा	६७	शमाधि योग	९२४
प्रीत्युदीधारण मुद्रा	६८	समाधि के कर्ष भेद	९२८
भारनेयी मुद्रा	६९	ध्यान योग समाधि	९२९
बापधीधारण मुद्रा	७०	रसानन्द योग समाधि	९३०
भाकानीधारण मुद्रा	७१	नाद योग समाधि	९३०
अश्वनी मुद्रा	७२	लय निद्रि पनाधि	९३१
पार्श्वी मुद्रा	७३	भक्ति योग समाधि	९३२
बाकी मुद्रा	७४	राज योग समाधि	९३३
मातंगिनी मुद्रा	७४		